डॉ. अम्बेडकर जयंती विशेषांक

वर्ष : 11 अंक : 4 अप्रैल, 2013 ₹ 20

सामाजिक न्याय संदेश

समतावादी विचार का संवाहक

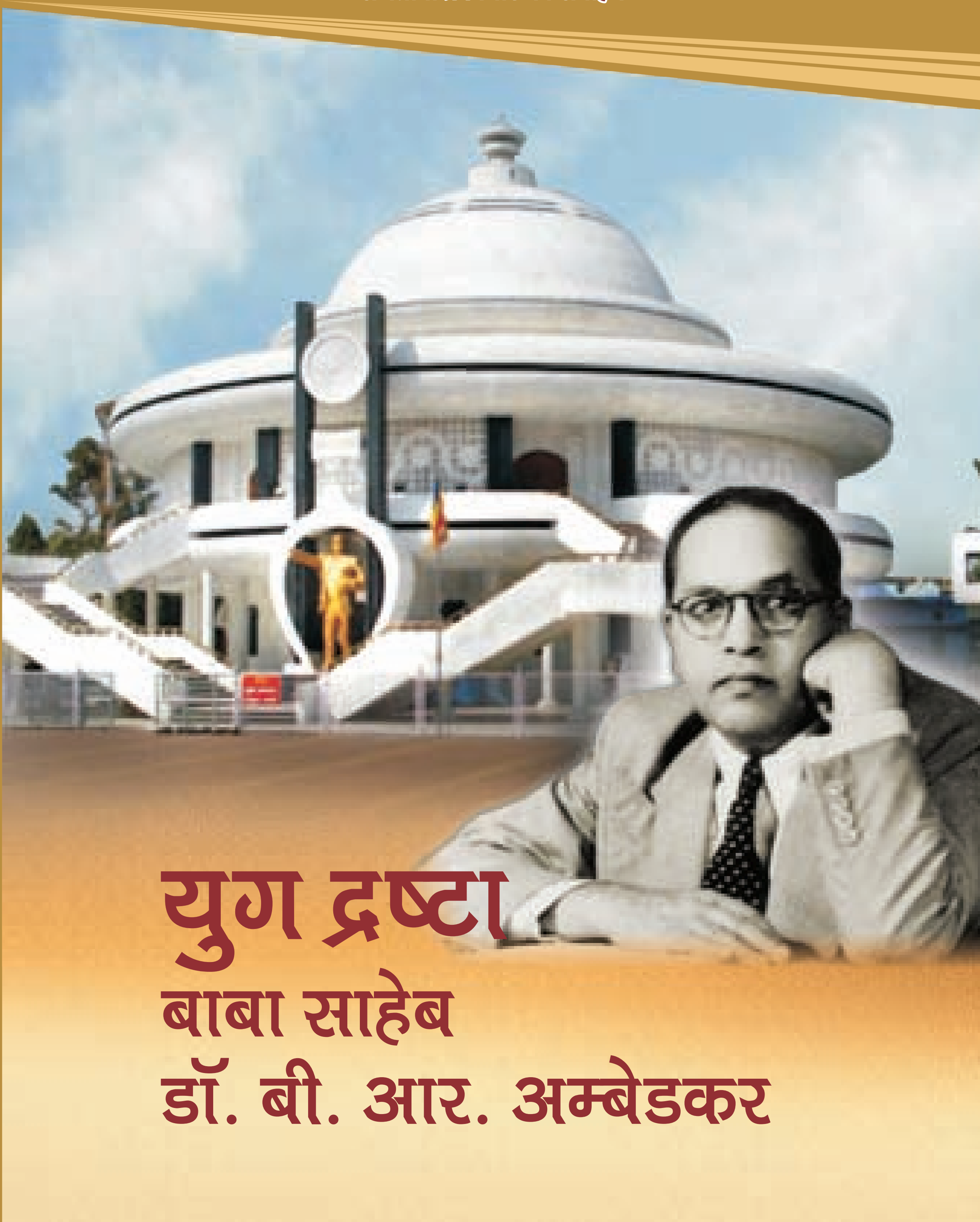

युग द्रष्टा
बाबा साहेब
डॉ. बी. आर. अम्बेडकर

6 दिसम्बर 2012 को बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर की 57 वें महापरिनिर्वाण दिवस पर संसद भवन के प्रांगन में राष्ट्र की ओर से बाबासाहेब को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए माननीय राष्ट्रपति श्री प्रणव मुखर्जी।

बाबासाहेब के 57वें महापरिनिर्वाण दिवस पर संसद भवन के प्रांगण में आयोजित कार्यक्रम में शिरकत करते हुए माननीय प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह, यू.पी.ए अध्यक्षा श्रीमती सोनिया गांधी, गृह मंत्री श्री सुशील कुमार शिंदे व डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान की चेयरपर्सन एंव सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्री कुमारी सैलजा।

सामाजिक न्याय संदेश

वर्ष : 11 ★ अंक : 04 ★ अप्रैल 2013 ★ कुल पृष्ठ : 76

अध्यक्ष सम्पादक मंडल

विनय कुमार पॉल

सम्पादक

सुधीर हिलसायन

सम्पादकीय कार्यालय-पत्र व्यवहार

सम्पादक, सामाजिक न्याय संदेश

डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान

15 **जनपथ, नई दिल्ली**-110001

फोन 011-23320589, 23320576, 23320571

फैक्स: 011-23320582

ई-मेल: editorsnsp@gmail.com

hilsayans@gmail.com

www.ambedkarfoundation.nic.in

व्यापार व्यवस्थापक

जगदीश प्रसाद

प्रकाशक व मुद्रक **विनय कुमार पॉल**, निदेशक (डॉ.अ.प्र.) द्वारा डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान के लिए अरावली प्रिन्टर्स एण्ड पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड W-30, ओखला फेस-II, नई दिल्ली 110020 से मुद्रित तथा 15 जनपथ, नई दिल्ली-110001 से प्रकाशित व **सुधीर हिलसायन**, सम्पादक (डॉ.अ.प्र.) द्वारा सम्पादित।

सामाजिक न्याय संदेश में प्रकाशित लेखों/रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। प्रकाशित लेखों /रचनाओं में दिए गए तथ्य संबंधी विवादों का पूर्ण दायित्व लेखकों /रचनाकारों का है। यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी वही हो। पत्रिका में प्रकाशित विज्ञापनों की विषय-वस्तु के लिए भी सामाजिक न्याय संदेश उत्तरदायी नहीं है। समस्त कानूनी मामलों का निपटारा केवल दिल्ली/नई दिल्ली के क्षेत्र एवं न्यायालयों के अधीन।

RNI NO. DELHIN/2003/9036

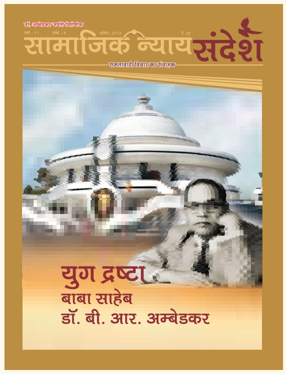

इस अंक में

❖ भारत में जातिप्रथा एवं जातिप्रथा उन्मूलन	डॉ. भीम राव अम्बेडकर	4-9
❖ युगद्रष्टा बाबा साहेब डॉ. बी. आर. अम्बेडकर	कन्हैया लाल चंचरीक	10-11
❖ शिक्षाशास्त्री डॉ. अम्बेडकर	डॉ.धर्मकीर्ति	12-14
❖ डॉ. अम्बेडकर की राष्ट्र-निर्माण की नई संकल्पना	डॉ. तेज सिंह	15-17
❖ राष्ट्र-निर्माण में बाबासाहेब का सांस्कृतिक योगदान	आनंद श्रीकृष्ण	18-23
❖ राष्ट्र निर्माता: बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर	प्रो. विवेक कुमार	24-26
❖ पत्रकारिता और पत्रकार डॉ. अम्बेडकर	प्रो. श्यौराजसिंह बेचैन	27-31
❖ भारत मे श्रम कानूनों पर विश्लेषणात्मक अध्ययन	डॉ. एस.एल. धनी	32-35
❖ डॉ. अम्बेडकर का जीवन दर्शन	हेमलता महिश्वर	36-38
❖ डॉ. बी. आर. अम्बेडकर की राष्ट्रीय स्वास्थ्य के विकास में भूमिका	डॉ. जुगल किशोर	39-40
❖ जातीय वर्चस्व एवं लोकतंत्र	डॉ. राजकुमार	41-44
❖ कौन करेगा डॉ. अम्बेडकर से नई मुलाकात	सुभाष गाताडे	45-48
❖ बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर और हिन्दू कोड बिल	डॉ. कौशल पंवार	49-50
❖ डॉ. अम्बेडकर का आर्थिक दर्शन	डॉ बिबेक कुमार रजक	51-52
❖ डॉ. अम्बेडकर और उनका सामाजिक चिन्तन	डॉ. सुरेश उजाला	53-54
❖ दलित साहित्य आन्दोलन की महत्ता और सार्थकता	डॉ. राम चंद्र	55-58
❖ किसानो एवं श्रमिकों के मसीहा बोधिसत्व डॉ. अम्बेडकर	सी.एस. भंडारी	59-61
❖ कहानी/अन्तर्कलह	डॉ. पूरन सिंह	62-65
❖ कविताएं	रजत रानी 'मीनू'	66
❖ सामाजिक क्रान्ति के जनक ज्योतिबाफुले	अनिल कुमार	67-68
❖ भारत के नवनिर्माण में डॉ. अम्बेडकर का योगदान	तेजपाल सिंह 'तेज'	69-71

ग्राहक सदस्यता शुल्क : वार्षिक ₹ 100, द्विवार्षिक : ₹ 180, त्रैवार्षिक : ₹ 250

डिमांड ड्राफ्ट/मनीऑर्डर/चेक *डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान*, 15 जनपथ, नई दिल्ली-110001 के नाम भेजें। आउट स्टेशन्स चेक स्वीकार नहीं किए जाएंगे।

कुमारी सैलजा
KUMARI SELJA

सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्री
भारत सरकार
शास्त्री भवन नई दिल्ली - 110 115
MINISTER OF
SOCIAL JUSTICE AND EMPOWERMENT
GOVERNMENT OF INDIA
SHASTRI BHAWAN, NEW DELHI-110 115

संदेश

बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर एक युगद्रष्टा थे। उनका सामाजिक चिंतन यथार्थपरक और मानवता के लिए था। समता, स्वतंत्रता, बंधुत्व, गरिमा, आत्मसम्मान एवं न्याय उनके दर्शन का मुख्य ध्येय रहा है। इसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए वे ऐसी सामाजिक संरचना करना चाहते थे जिसमें मनुष्य को अपना सर्वमुखी विकास करने का अवसर प्राप्त हो। सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, आर्थिक और शैक्षणिक अधिकार की प्राप्ति का प्रावधान उनका मुख्य संदेश रहा है। डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान की मासिक पत्रिका 'सामाजिक न्याय संदेश' इसी उद्देश्य को लेकर आगे बढ़ रही है।

डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान की स्थापना, बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर जन्म शताब्दी समारोह समिति द्वारा लिए गए निर्णय के तहत 24 मार्च 1992 को हुई। प्रतिष्ठान का मुख्य उद्देश्य डॉ. अम्बेडकर के विचारों एवं आदर्शों को विभिन्न कार्यक्रमों एवं सामाजिक गतिविधियों के द्वारा जन-जन तक पहुंचाने का है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अपनी प्रतिबद्धता को दर्शाते हुए प्रतिष्ठान ने 'सामाजिक न्याय संदेश' पत्रिका का प्रकाशन दिसम्बर 2002 में शुरु किया था। कुछ तकनीकी कारणों से पत्रिका का प्रकाशन जनवरी 2004 के बाद अवरुद्ध हो गया था।

यह सुखद संदेश है कि डॉ. अम्बेडकर की 122वीं जयंती के पुनीत अवसर पर इस पत्रिका के पुनः नियमित प्रकाशन की व्यवस्था कर दी गई है। अतएव इस अवसर पर 'सामाजिक न्याय संदेश' का यह अंक आपके हाथों में सौंपते हुए मुझे हार्दिक प्रसन्नता हो रही है।

आप सभी को बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर जयंती की शुभकामनाएं।

सैलजा

(कुमारी सैलजा)

सम्पादकीय

मानवीय संवेदनशीलता, न्यायप्रियता तथा 'दूसरों के अधिकारों के प्रति सम्मान'

आदमी और जानवर में आखिर कौन सा ऐसा फर्क है, जो आदमी को आदमी और जानवर को जानवर बनाए रखता है? यह अंतर है संवेदनशीलता का, जो आज भी मानव को सभी प्राणियों में सबसे श्रेष्ठ बनाए हुए है, आप कहेंगे कि यह संवेदनशीलता क्या है? तो जरा कल्पना कीजिए कि आप अपने घर की खिड़की से बाहर निहार रहे हैं और एकाएक एक नन्हा सा बालक दौड़ता हुआ आता है, और अगले ही पल उसका पैर सड़क पर गलती से पड़े कांच के टुकड़े पर पड़ने ही वाला है। उस क्षणांश में आपके अन्दर से हृदय विदारक चीख निकल उठती है, यही है वह संवदेनशीलता जो एक अंजान बालक की पीड़ा का दर्द आपके दिल में एक कष्टदायक अनुभूति के रूप में उतारती है।

मानव को मानव बनाने वाली इस संवेदनशीलता अर्थात् मानवीयता का दायरा यदि आप बढ़ाए और उसे इतना व्यापक बनाएं कि जाति, धर्म, क्षेत्र, भाषा अथवा राष्ट्र की सीमाओं से ऊपर उठकर इसमें संपूर्ण मानव जाति समा जाए तभी आप समाज का सामूहिक दर्द अनुभव कर पाएंगे और मानव की पीड़ा दूर करने की दिशा में अपने कदम उठा सकेंगे।

डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान की मासिक पत्रिका 'समाजिक न्याय संदेश' समता, स्वतंत्रता, बन्धुत्व एवं न्याय पर आधारित सशक्त एवं समृद्ध समाज और राष्ट्र की संकल्पना को साकार करने के संदेश को आम नागरिकों तक पहुंचाने की प्रतिबद्धता के साथ आपके सामने है, प्रस्तुत विशेषांक में बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर के कार्य व अघ्ययन क्षेत्र को मद्दे नजर रखते हुए विभिन्न विषयों पर विद्वान लेखकों के आलेख हैं। आशा है यह बाबासाहेब को समग्रता में समझने में मददगार होगी पत्रिका हर महीने एक विशेष थीम पर फोकस करके प्रकशित करने की योजना है, जिसमें डॉ अम्बेडकर के रचना सागर के विभिन्न पक्षों पर विद्वान लेखकों के लेख प्रकाशित किए जाएगें। आपके बहुमूल्य सुझावों की प्रतीक्षा रहेगी?

मानवीय संवेदनशीलता, न्यायप्रियता तथा **'दूसरों के अधिकारों के प्रति सम्मान'** की भावना जगाने की आकांक्षा के साथ, डॉ. अम्बेडकर की 122वीं जयंती दिवस पर सुधी पाठको, संभावित लेखकों को बहुत-बहुत शुभकामनाएं।

(सुधीर हिलसायन)

पुस्तक अंशः पहली किश्त

भारत में जातिप्रथा एवं जातिप्रथा उन्मूलन

▪ डॉ. भीम राव अम्बेडकर

जात-पांत तोड़क मंडल लाहौर के वार्षिक सम्मेलन (1936) के लिए बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर द्वारा तैयार किया गया भाषण, जिसे सम्मेलन की स्वागत समिति को पसंद नहीं आने के कारण पढ़ा नहीं जा सका। उस भाषण को डॉ अम्बेडकर ने 'Annihilation of Caste' के नाम से प्रकाशित किया। उनकी यह कृति बहुत ही लोकप्रिय हुई। कई भाषाओं में इसका अनुवाद भी हुआ। आज भी उनकी यह कृति बहुत ही पढ़ी जाती है। अगर यह कहा जाए कि बाबासाहेब डॉ अम्बेडकर के रचना सागर में डुबकी लगाने वाले लोगों की पहली डुबकी इस कृति के अध्ययन से पूरी होती है, तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। हिन्दी में अनुदित उनकी यह कृति 'भारत में जातिप्रथा एवं जातिप्रथा उन्मूलन' को धारावाहिक के तौर पर यहां प्रकाशित किया जा रहा है। आशा है पाठक इसे पसंद करेंगे।

– सम्पादक

मुझे जात-पांत तोड़क मंडल के सदस्यों की स्थिति पर निश्चय ही खेद है, जिन्होंने इस सम्मेलन की अध्यक्षता करने के लिए मुझे आमंत्रित करने की महती कृपा की है। मुझे यकीन है कि अध्यक्ष के रूप में मेरा चुनाव करने पर उनसे अनेक प्रश्न पूछे जाएंगे। मंडल को इस बात को स्पष्ट करने के लिए कहा जाएगा कि उसने लाहौर में हो रहे समारोह की अध्यक्षता करने के लिए बंबई से किसी व्यक्ति को क्यों बुलाया है। मुझे विश्वास है कि मंडल को इस समारोह की अध्यक्षता करने के लिए मुझसे कहीं अधिक योग्य व्यक्ति आसानी से मिल सकता था। मैंने हिन्दुओं की आलोचना की है। मैंने महात्मा के प्रभुत्व पर संदेह प्रकट किया है, जिन्हें वे श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं। वे मुझसे घृणा करते हैं। उनके लिए मैं उनके बाग में एक सांप के समान हूं। इसमें संदेह नहीं कि राजनीतिक मनोवृत्ति के हिन्दू इस मंडल से इस बात का स्पष्टीकरण मांगेंगे कि इस सम्मानजनक पद के लिए मुझे क्यों बुलाया गया है। यह एक बड़े साहस का काम है। अगर कुछ राजनीतिक हिन्दू इसे अपमान समझते हैं तो मुझे इस पर कोई आश्चर्य नहीं होगा। इस पद पर मेरे चुनाव से निश्चय ही धार्मिक प्रवृत्ति के सामान्य हिन्दुओं को प्रसन्नता नहीं होगी। मंडल से इस बात को स्पष्ट करने के लिए कहा जाएगा कि उसने अध्यक्ष के चुनने में शास्त्रीय निषेधादेश की अवज्ञा क्यों की। शास्त्रों के अनुसार ब्राह्मण को ही तीनों वर्गों का गुरु नियुक्त किया जाता है। 'वर्णानाम ब्राह्मणों गुरु', यही शास्त्रों का निर्देश है। इसलिए मंडल जानता है कि एक हिन्दू को किससे शिक्षा लेनी चाहिए और किससे नहीं। शास्त्र किसी हिन्दू को गुरु रूप में किसी भी ऐसे व्यक्ति को मात्र इसलिए कि वह ज्ञानी है, स्वीकार करने की अनुमति नहीं देते। यह बात महाराष्ट्र के एक ब्राह्मण संत रामदास ने काफी स्पष्ट कर दी थी, जिनके बारे में कहा जाता है कि उन्होंने शिवाजी को हिन्दू राज की स्थापना के लिए प्रेरित किया था। रामदास 'दासबोध' नाम की अपनी मराठी काव्य रचना में जो एक सामाजिक-राजनीतिक-धार्मिक प्रबंध है, हिन्दुओं को संबोधित करते हुए पूछते हैं कि क्या हम किसी अन्त्यज को इस कारण से अपना गुरु मान सकते हैं कि वह एक पंडित (अर्थात् विद्वान) है। वह उत्तर देते हैं, नहीं। इन प्रश्नों का क्या उत्तर दिया जाए, इस मामले को मैं मंडल पर छोड़ देता हूं। मंडल उन कारणों को बहुत अच्छी तरह जानता है कि क्यों उन्हें अध्यक्ष के लिए बंबई की यात्रा करनी पड़ी और ऐसे व्यक्ति को इसके लिए निर्धारित करना पड़ा जो हिन्दुओं का इतना विरोधी हो तथा अपने स्वर को इतना नीचे गिराकर एक अन्त्यज, अर्थात् अछूत को सवर्णों की सभा में भाषण देने के लिए आमंत्रित करना पड़ा। जहां तक मेरा प्रश्न है, मैं कहना चाहूंगा कि मैंने इस निमंत्रण को अपनी तथा अपने अनेक अछूत साथियों की इच्छा के विरुद्ध स्वीकार किया है। मैं जानता हूं कि हिन्दू मुझसे उखड़े हुए हैं? मैं जानता

हूं। मैं आज जो कुछ कहने जा रहा हूं, क्या उससे आपको उस समस्या को सुलझाने में जिससे आप जूझ रहे हैं, किसी प्रकार से कोई सहायता मिलेगी, इसका निर्णय आप करें। मैं जो कुछ करने की आशा करता हूं, वह यही है कि मैं समस्या पर अपने विचार आपके सामने रखूं।

भारत में समाज सुधार का मार्ग स्वर्ग के मार्ग के समान है और इस कार्य में अनेक कठिनाइयां हैं। भारत में समाज सुधार कार्य में सहायक मित्र कम और आलोचक अधिक हैं। आलोचकों के दो स्पष्ट वर्ग हैं। एक वर्ग में राजनीतिक सुधारक हैं और दूसरे में समाजवादी।

एक समय था, जब यह माना जाता था कि सामाजिक कुशलता के बिना अन्य कार्य क्षेत्रों में प्रगति असंभव है। कुप्रथाओं से फैली बुराइयों के कारण हिन्दू समाज की कार्य-कुशलता समाप्त हो चुकी थी। अब इन बुराइयों को जड़ से उखाड़ फेंकने के लिए अथक प्रयास करने होंगे। इस तथ्य को समझ कर ही राष्ट्रीय कांग्रेस के जन्म के साथ ही सामाजिक सम्मेलन की भी स्थापना हुई थी। जहां कांग्रेस का संबंध देश के राजनीतिक संगठन में कमजोर तथ्यों को परिभाषित करना था, वहां सामाजिक सम्मेलन हिन्दू समाज के सामाजिक संगठन में कमजोर बातों को दूर करने में लगा हुआ था। कुछ समय तक कांग्रेस और सम्मेलन ने एक सामान्य क्रियाकलाप के दो अंगों के रूप में कार्य किया और उनके वार्षिक अधिवेशन भी एक ही पंडाल में होते थे। किंतु शीघ्र ही ये दो अंग दो दलों में बदल गए-एक राजनीतिक सुधार दल और दूसरा सामाजिक सुधार दल। इनके बीच उग्र विवाद उठ खड़े हुए। राजनीतिक सुधार दल, राष्ट्रीय कांग्रेस का समर्थन करता था और सामाजिक सुधार दल सामाजिक सम्मेलन का। इस प्रकार दो संस्थाएं दो विरोधी कैम्प बन गए। मुद्दा यह था कि क्या सामाजिक सुधार

दल, राष्ट्रीय कांग्रेस का समर्थन करता था और सामाजिक सुधार दल सामाजिक सम्मेलन का। इस प्रकार दो संस्थाएं दो विरोधी कैम्प बन गए। मुद्दा यह था कि क्या सामाजिक सुधार राजनीतिक सुधारों से पहले होने चाहिएं। एक दशक तक दोनों शक्तियों का संतुलन समान रूप से बना रहा है और उनमें किसी भी पक्ष की विजय के बिना लड़ाई चलती रही। किंतु यह स्पष्ट था कि सामाजिक सम्मेलन का भाग्य तेजी से अस्त हो रहा था। जिन सज्जनों ने सामाजिक सम्मेलन के अधिवेशनों की अध्यक्षता की थी, वे इस बात से दुखी थे कि बहुसंख्यक शिक्षित हिन्दू राजनीतिक उत्थान के पक्षधर हैं और सामाजिक सुधारों के प्रति उदासीन हैं। कांग्रेस में उपस्थित होने वाले लोगों की संख्या बहुत बड़ी थी। जो लोग उसमें उपस्थित नहीं हुए, उनकी सहानुभूति इसके साथ थी तथा उनकी संख्या और भी बड़ी थी। जो लोग सामाजिक सम्मेलन में उपस्थित हुए, उनकी संख्या बहुत कम थी। इस उदासीनता और कार्यकर्ताओं में हुई कमी के शीघ्र बाद राजनीतिज्ञों की ओर से इसका सक्रिय विरोध आरंभ हो गया। कांग्रेस ने शिष्टता के नाते सामाजिक सम्मेलन को अपने पंडाल का प्रयोग करने की जो अनुमति दे रखी थी, स्वर्गीय श्री तिलक के नेतृत्व में उसे वापस ले लिया गया और शत्रुता की भावना इतनी हो गई कि जब सामाजिक सम्मेलन ने अपना पंडाल खड़ा करने की इच्छा की तो इसके विरोधियों ने पंडाल को जला डालने की धमकी दी। इस प्रकार समय के साथ-साथ राजनीतिक सुधार के पक्ष वाले दल की जीत हुई और सामाजिक सम्मेलन गायब हो गया और लोग उसे भूल गए। इलाहाबाद में हुए कांग्रेस के आठवें अधिवेशन के अध्यक्ष के रूप में श्री डब्ल्यू.सी. बनर्जी ने जो भाषण दिया था, वह सामाजिक सम्मेलन की मृत्यु पर पढ़े गए शोक संदेश जैसा लगता है। वह कांग्रेस की प्रवृत्ति का इतना द्योतक है कि मैं उससे यहां एक उद्धरण दे रहा हूं। श्री बनर्जी ने कहा था :

''मैं ऐसे लोगों की बात सुनने को बिलकुल तैयार नहीं हूं, जो यह कहते हैं कि हम अपनी सामाजिक प्रणाली में सुधार नहीं करेंगे, जब तक हम राजनीतिक सुधारों के योग्य नहीं हो सकेंगे। मुझे दोनों के बीच कोई संबंध नहीं दिखाई देता।...क्या हम (राजनीतिक सुधार के लिए) इसलिए उपयुक्त नहीं हैं, क्योंकि हमारी विधवाएं अविवाहित रह जाती हैं और हमारी लड़कियां अन्य देशों की तुलना में बहुत पहले ही विवाह-सूत्र में बांध दी जाती हैं। क्योंकि पत्नी और पुत्रियां हमारे मित्रों से मिलने जाने के लिए हमारे साथ कारों में नहीं चलतीं? क्योंकि हम अपनी पुत्रियों को ऑक्सफोर्ड और केम्ब्रिज नहीं भेजते?''

मैंने जैसा कि श्री बनर्जी ने प्रस्तुत किया था, राजनीतिक सुधार का मामला आपके सामने रखा है। अनेक लोग ऐसे थे, जो यह जानकर प्रसन्न थे कि कांग्रेस की जीत हुई। किंतु जो लोग समाज सुधार के महत्व में विश्वास रखते हैं वे पूछ सकते हैं कि क्या श्री बनर्जी की दलील अंतिम है? क्या इससे यह सिद्ध होता है कि समाज सुधार का राजनीतिक सुधार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता? यदि मैं मामले के

दूसरे पहलू पर विचार करूं तो इससे मामले को समझने में सहायता मिलेगी। मैं अपने तथ्यों के लिए अछूतों के साथ व्यवहार का उल्लेख करूंगा।

मराठा राज्य में पेशवाओं के शासन में यदि कोई हिन्दू सड़क पर आ रहा होता था तो किसी अछूत को इसलिए उस सड़क पर चलने की अनुमति नहीं थी कि उसकी परछाई से वह हिन्दू अपवित्र हो जाएगा। अछूत के लिए यह आवश्यक था कि वह अपनी कलाई या गर्दन में निशानी के तौर पर एक काला धागा बांधे, जिससे कि हिन्दू गलती से उससे छूकर अपवित्र हो जाने से बच जाए। पेशवाओं की राजधानी पूना में किसी भी अछूत के लिए अपनी कमर में झाड़ू बांधकर चलना आवश्यक था, जिससे कि उसके चलने से पीछे की धूल साफ होती रहे और ऐसा न हो कि कहीं उस रास्ते से चलने वाला कोई हिन्दू उससे अपवित्र हो जाए। पूना में अछूतों के लिए यह आवश्यक था कि जहां कहीं भी वे जाएं, अपने थूकने के लिए मिट्टी का एक बर्तन अपनी गर्दन में लटका कर चलें, क्योंकि ऐसा न हो कि कहीं जमीन पर पड़ने वाले उसके थूक से अनजाने में वहां से गुजरने वाला कोई हिन्दू अपवित्र हो जाए। मैं हाल ही के कुछ और तथ्यों का भी यहां उल्लेख करना चाहता हूं। मध्य भारत की बलाई नाम की एक अछूत जाति पर हिन्दुओं द्वारा किए जाने वाले अत्याचारों का जिक्र करना काफी होगा। 4 जनवरी 1928 के *टाइम्स ऑफ इंडिया* की एक रिपोर्ट आप देखें। *टाइम्स ऑफ इंडिया* के संवाददाता ने समाचार दिया है कि कनरिया, बिचोली-हाफसी, बिचोली-मर्दाना गांवों तथा इंदौर जिले (इंदौर रियासत) के 15 अन्य गांवों की ऊंची जाति के हिन्दुओं ने, अर्थात् कालोटो, राजपूतों और ब्राह्मणों, जिनमें पटेल और पटवारी भी शामिल हैं, अपने-अपने गांवों के बलाइयों को सूचित किया है कि यदि वे उनमें रहना चाहते हैं तो उन्हें नियमों का अवश्य पालन करना होगा:

(क) बलाई, सुनहरी गोटेदार किनारी की पगड़ियां नहीं बांधेंगे।

(ख) वे रंगीन या फैन्सी किनारी की धोतियां नहीं पहनेंगे।

(ग) वे किसी हिन्दू की मृत्यु पर मृतक के संबंधियों को चाहे वे कितनी भी दूर क्यों न रहते हों, मरने की सूचना देंगे।

(घ) सभी हिन्दुओं के विवाहों में बलाई लोग बारात के आगे और विवाह के दौरान बाजा बजाएंगे।

(ङ) बलाई स्त्रियां सोने या चांदी के आभूषण नहीं पहनेंगी। वे फैन्सी गाउन या जाकेट भी नहीं पहनेंगी।

(च) बलाई स्त्रियों को हिन्दू स्त्रियों के प्रसव के सभी मामलों में देखभाल करनी होगी।

(छ) बलाई लोगों को बिना कोई पारिश्रमिक मांगे सेवा करनी होगी और हिन्दू उन्हें जो कुछ खुश होकर देंगे, लेना होगा।

(ज) अगर बलाई लोग इन शर्तों का पालन करना स्वीकार नहीं करते हैं तो उन्हें गांव को छोड़ना होगा।

बलाई लोगों ने उन्हें मानने से इन्कार कर दिया और हिन्दुओं ने उनके विरुद्ध कार्रवाई की। बलाइयों को गांवों के कुंओं से पानी नहीं भरने दिया गया। उन्हें अपने पशुओं को चराने के लिए नहीं ले जाने दिया गया। बलाई लोगों को हिन्दुओं की भूमि से गुजरने की मनाही कर दी, ताकि यदि किसी बलाई का खेत हिन्दुओं के खेतों से घिरा हो तो बलाई अपने ही खेत तक न पहुंच सकें। हिन्दुओं ने अपने पशुओं को भी बलाइयों के खेतों में चरने के लिए छोड़ दिया। बलाइयों ने इन अत्याचारों के विरुद्ध दरबार में याचिकाएं दायर कीं, किंतु चूंकि उन्हें समय पर कोई राहत नहीं मिली और अत्याचार जारी रहा तो सैकड़ों बलाई लोग अपने बाल-बच्चों सहित अपने घरों को जहां वे पीढ़ियों से रहते आ रहे थे, छोड़कर समीपवर्ती रियासतों, अर्थात् धार, देवास, बागली, भोपाल, ग्वालियर तथा अन्य रियासतों के गांवों में जाकर बसने के लिए मजबूर हो गए। अपने नए घरों में उनकी क्या स्थिति रही, उस पर फिलहाल हम विचार नहीं करेंगे। गुजरात में कविठा की घटना तो पिछले ही वर्ष घटी है। कविठा के हिन्दुओं ने अछूतों को आदेश दिया कि वे अपने बच्चों को सरकार द्वारा चलाए जा रहे गांव के आम स्कूल में न भेजें। हिन्दुओं की इच्छाओं के विरुद्ध नागरिक अधिकार का प्रयोग करने का साहस करने के लिए कविठा के अछूतों को कितने कष्टों का सामना करना पड़ा; सभी जानते हैं, इसे विस्तार से बताने की आवश्यकता नहीं है। एक अन्य घटना गुजरात में अहमदाबाद जिले के जानू गांव में हुई। नवम्बर 1935 में संपन्न परिवारों की कुछ अछूत महिलाओं ने धातु के बर्तनों में पानी लाना आरंभ कर दिया। हिन्दुओं ने अछूतों द्वारा धातु के बर्तनों के प्रयोग को अपने सम्मान के विरुद्ध समझा और अछूत महिलाओं पर इस गुस्ताखी के लिए हमला किया। एक बहुत ही नई घटना की सूचना

सामाजिक सम्मेलन एक ऐसी संस्था थी, जिसका संबंध मुख्य रूप से ऊंची जाति के प्रबुद्ध हिन्दुओं से था जो जातिप्रथा के उन्मूलन के लिए आंदोलन करना आवश्यक नहीं समझते थे, या उनमें इसके लिए आंदोलन करने का साहस नहीं था। उन्होंने जबरन विधवापन, बाल विवाह जैसी बुराइयों को जो उनमें फैली हुई थीं और जिन्हें वे खुद महसूस करते थे, दूर करने की भारी आवश्यकता को महसूस किया। वे हिन्दू समाज में सुधार करने के लिए खड़े नहीं हुए थे। वह जो लड़ाई लड़ रहे थे, वह परिवार के सुधार के प्रश्न पर ही केन्द्रित थी। इसका संबंध जातिप्रथा को तोड़ने के अर्थ में समाज सुधार से नहीं था। समाज सुधारकों ने इस मुद्दे को कभी नहीं उठाया। यही कारण है कि सामाजिक सुधार दल समाप्त हो गया।

जयपुर रियासत में चकवारा से मिली है। समाचार-पत्रों में छपी सूचना से पता चलता है कि चकवारा के एक अछूत ने जो तीर्थ-यात्रा के बाद घर लौटा था, अपने धार्मिक अनुष्ठान को पूरा करने के लिए गांव के अपने अछूत भाइयों को भोज देने की व्यवस्था की थी। मेजबान की इच्छा थी कि मेहमानों को बहुमूल्य भोजन खिलाया जाए और इसमें घी से युक्त व्यंजन भी परोसे जाएं। किन्तु जिस समय अछूत लोग भोजन कर रहे थे तो सैकड़ों की संख्या में हिन्दू लाठियां लेकर वहां दौड़े और भोजन को खराब कर दिया तथा अछूतों को बुरी तरह पीटा। परोसे गए भोजन को छोड़, मेहमान अपनी जान बचाने के लिए भाग गए। नि:सहाय अछूतों पर ऐसा प्राणघातक आक्रमण क्यों किया गया? इसका जो कारण बताया गया है, वह यह था कि अछूत मेजबान इतना धृष्ट था कि उसने घी का प्रयोग किया और उसके अछूत मेहमान इतने मूर्ख थे कि वे उसे खा रहे थे। घी नि:संदेह अमीरों के लिए एक विलास की वस्तु है। किंतु कोई भी यह नहीं सोचेगा कि घी ऊंचे सामाजिक स्तर का प्रतीक है। चकवारा के हिन्दुओं ने इसका दूसरा अर्थ लिया और उन अछूतों द्वारा उनके साथ की गई गलती के लिए हिन्दुओं के धार्मिक क्रोध में उनसे बदला लिया, जिन्होंने अपने भोजन में घी परोसकर उनका अपमान किया था। उन्हें यह जानना चाहिए था कि वे हिन्दुओं के सम्मान की बराबरी नहीं कर सकते। इसका यह अर्थ है कि किसी अछूत को घी का प्रयोग नहीं करना चाहिए। ऐसा करना हिन्दुओं के प्रति उछंडता है। यह घटना पहली अप्रैल 1936 या उसके आसपास की है।

इन तथ्यों को बताने के बाद अब मैं सामाजिक सुधार के बारे में बात करूंगा। ऐसा करने में मैं जहां तक हो सकता है, श्री बनर्जी का अनुसरण करूंगा। मैं राजनीतिक प्रवृत्ति के हिन्दुओं से पूछता हूं, ''जब आप अपने ही देश के अछूतों जैसे एक बहुत बड़े वर्ग को सार्वजनिक स्कूल का प्रयोग नहीं करने देते तो क्या आप राजनीतिक सत्ता के योग्य हैं? जब आप उन्हें सार्वजनिक कुंओं का प्रयोग नहीं करने देते तो क्या आप राजनीतिक सत्ता के योग्य हैं? जब आप उन्हें आम सड़कों का प्रयोग नहीं करने देते तो क्या आप राजनीतिक सत्ता के योग्य हैं? जब आप उन्हें अपनी पसंद के आभूषण और वेशभूषा धारण नहीं करने देते तो क्या आप राजनीतिक सत्ता के योग्य हैं? जब आप उन्हें उनकी पसंद का भोजन नहीं करने देते तो क्या आप राजनीतिक सत्ता के योग्य हैं?'' मैं इस प्रकार के अनेक प्रश्न पूछ सकता हूं, किंतु ये ही प्रश्न काफी होंगे। मैं व्यग्र हूं यह जानने के लिए कि श्री बैनर्जी क्या उत्तर देते। मुझे यकीन है कि कोई भी समझदार व्यक्ति इसका 'हां' में उत्तर देने का साहस नहीं करेगा। प्रत्येक कांग्रेसी को, जो श्री मिल के इस सिद्धांत को मानता है कि एक देश दूसरे देश पर शासन करने योग्य नहीं है, यह बात स्वीकार करनी चाहिए कि एक वर्ग दूसरे वर्ग पर भी शासन करने योग्य नहीं है।

तब यह कैसे हुआ कि सामाजिक सुधार दल लड़ाई हार गया। इसे सही-सही रूप में समझने के लिए इस बात पर ध्यान देना जरूरी है कि समाज सुधारक किस प्रकार के समाज सुधार के लिए आंदोलन कर रहे हैं। इस संबंध में यह आवश्यक है कि हिन्दू परिवार के सुधार के अर्थ में समाज सुधार और हिन्दू समाज के पुनर्गठन तथा पुनर्निर्माण के अर्थ में समाज सुधार, इन दोनों में अंतर किया जाए। पहले प्रकार के समाज सुधार का संबंध विधवा विवाह, बाल विवाह, आदि से है, जबकि दूसरे प्रकार के समाज सुधार का संबंध जातिप्रथा के उन्मूलन से है। सामाजिक सम्मेलन एक ऐसी संस्था थी, जिसका संबंध जातिप्रथा

के उन्मूलन से है। सामाजिक सम्मेलन एक ऐसी संस्था थी, जिसका संबंध मुख्य रूप से ऊंची जाति के प्रबुद्ध हिन्दुओं से था जो जातिप्रथा के उन्मूलन के लिए आंदोलन करना आवश्यक नहीं समझते थे, या उनमें इसके लिए आंदोलन करने का साहस नहीं था। उन्होंने जबरन विधवापन, बाल विवाह जैसी बुराइयों को जो उनमें फैली हुई थीं और जिन्हें वे खुद महसूस करते थे, दूर करने की भारी आवश्यकता को महसूस किया। वे हिन्दू समाज में सुधार करने के लिए खड़े नहीं हुए थे। वह जो लड़ाई लड़ रहे थे, वह परिवार के सुधार के प्रश्न पर ही केन्द्रित थी। इसका संबंध जातिप्रथा को तोड़ने के अर्थ में समाज सुधार से नहीं था। समाज सुधारकों ने इस मुद्दे को कभी नहीं उठाया। यही कारण है कि सामाजिक सुधार दल समाप्त हो गया।

मैं जानता हूं कि यह दलील इस तथ्य को नहीं बदल सकती कि राजनीतिक सुधार को वास्तव में सामाजिक सुधार से वरीयता मिली। किंतु तर्क का अगर अधिक नहीं तो इतना मूल्य तो है ही। इससे स्पष्ट होता है कि समाज सुधारक क्यों सफल नहीं हुए। इसमें हमें यह भी समझने में सहायता मिलती है कि राजनीतिक सुधार दल ने सामाजिक सुधार दल के ऊपर जो विजय प्राप्त की, वह कितनी सीमित थी और यह विचार कि सामाजिक सुधार के राजनीतिक सुधार से पहले होने की आवश्यकता नहीं है, ऐसा विचार केवल तभी उत्पन्न होता है जबकि समाज सुधार का अर्थ परिवार का सुधार हो। यह तथ्य कि राजनीतिक सुधार समाज के पुनर्गठन के अर्थ में सामाजिक सुधार के ऊपर वरीयता प्राप्त नहीं कर सकता, एक ऐसा शोध-प्रबंध है जिस पर मैं समझता हूं मतभेद नहीं हो सकता। राजनीतिक संविधानों के निर्माताओं को सामाजिक शक्तियों को ध्यान में रखना चाहिए। इस तथ्य को फर्डिनेंड लेजले जैसे महान व्यक्ति ने स्वीकार किया है जो कार्ल मार्क्स का मित्र और सहकर्मी था। 1862 में प्रशिया की एक सभा में लेजले ने कहा था :

''संवैधानिक प्रश्न सर्वप्रथम अधिकार के प्रश्न नहीं, बल्कि शक्ति के प्रश्न होते हैं। किसी देश के वास्तविक संविधान का अस्तित्व उस देश में विद्यमान शक्ति की वास्तविक स्थिति में ही होता है। अतः राजनीतिक संविधानों का मूल्य और स्थायित्व केवल तभी होता है, जबकि वे शक्ति की उन शर्तों को सही-सही ढंग से प्रकट करते हैं जो किसी समाज में विद्यमान होती हैं।''

किंतु प्रशिया जाने की जरूरत नहीं है। घर में ही उसके प्रमाण हैं। उस सांप्रदायिक अधिनिर्णय का क्या महत्व है, जिसमें विविध जातियों और समुदायों के परिभाषित अनुपातों में राजनीतिक सत्ता का आवंटन हो? मेरे विचार से इसका महत्व इस बात में है कि राजनीतिक संविधान को सामाजिक संगठन को ध्यान में रखना चाहिए। इससे प्रकट होता है कि ऐसे राजनीतिज्ञ जिन्होंने यह नहीं माना कि भारत की सामाजिक समस्या का राजनीतिक समस्या पर भी कोई प्रभाव है, वे संविधान तैयार करने में सामाजिक समस्या को मानने के लिए बाध्य हुए। कहने का तात्पर्य यह है कि सांप्रदायिक अधिनिर्णय सामाजिक सुधार की उपेक्षा से उत्पन्न प्रतिशोध है। यह सामाजिक सुधार दल के लिए विजय है जो यह दिखाता है कि चाहे वे हार गए, किंतु उनका सामाजिक सुधार के महत्व पर बल देना ठीक था। मैं जानता हूं कि बहुत से लोग इस तथ्य को स्वीकार नहीं करेंगे। इस प्रकार का विचार अभी मौजूद है और इस बात पर विश्वास करना अच्छा लगता है कि सांप्रदायिक अधिनिर्णय अस्वाभाविक है और यह नौकरशाही तथा अल्पसंख्यकों के बीच अपवित्र गठबंधन का परिणाम है। अगर यह कहा जाए कि सांप्रदायिक अधिनिर्णय एक अच्छा साक्ष्य नहीं है तो मैं अपने मत के समर्थन में इस पर एक साक्ष्य के रूप में भरोसा नहीं करना चाहता। आयरलैंड को लीजिए। आयरिश होम रूल का इतिहास क्या बताता है? सब जानते हैं कि अल्स्टर और दक्षिणी आयरलैंड के प्रतिनिधियों के बीच बातचीत के दौरान दक्षिणी आयरलैंड के प्रतिनिधि श्री रेडमंड ने अल्स्टर को समस्त आयरलैंड के लिए समान होम रूल संविधान के अंतर्गत लाने के लिए अल्स्टर के प्रतिनिधियों से कहा था, ''आप जिस राजनीतिक सुरक्षा को पसंद करते हैं, उसकी मांग करें, आपको वह मिलेगी।'' पता है, अल्स्टर के लोगों ने क्या जवाब दिया? उनका उत्तर था, ''धिक्कार है, आपकी सुरक्षा को हम किसी भी शर्त पर अपने ऊपर आपका शासन नहीं चाहते।'' जो लोग भारत में अल्पसंख्यकों पर दोषारोपण करते हैं, उन्हें इस बात पर विचार करना चाहिए कि यदि अल्पसंख्यक वह रवैया अपना लेते, जो अल्स्टर ने अपनाया था तो बहुसंख्यकों की राजनीतिक आकांक्षाओं का क्या होता? आयरिश होम रूल के प्रति अल्स्टर के रवैए को देखते हुए क्या वह कुछ भी नहीं है कि अल्पसंख्यक उस बहुसंख्यक के शासन में रहने को सहमत हो गए, जिसने राजनीतिज्ञता की कोई अधिक भावना नहीं दिखाई और क्यों उनके लिए कुछ सुरक्षात्मक उपायों की व्यवस्था की? किंतु यह केवल आकस्मिक है। मुख्य प्रश्न यह है कि अल्स्टर ने ऐसा रवैया क्यों अपनाया? मैं इसका केवल एक उत्तर दे सकता हूं कि अल्स्टर और दक्षिणी आयरलैंड के बीच एक सामाजिक समस्या थी। कैथोलिकों और प्रोटेस्टेंटों के बीच एक समस्या निश्चय ही जाति की समस्या थी। आयरलैंड में होम रूल एक प्रकार से रोम का शासन रूल होगा। अल्स्टरवासियों ने

इसी रूप में अपना उत्तर तैयार किया था। किंतु इस बात को बताने का यही एक अन्य तरीका है कि कैथोलिकों और प्रोटेस्टेंटों के बीच जाति की सामाजिक समस्या थी, जिसने वहां राजनीतिक समस्या का हल नहीं होने दिया। इस साक्ष्य को फिर से चुनौती दिया जाना निश्चित है। यहां भी साम्राज्यवादी हाथ काम कर रहा था। किन्तु मेरे साधन समाप्त नहीं हुए हैं। मैं रोम के इतिहास से साक्ष्य दूंगा। यहां कोई भी यह नहीं कह सकता कि कोई दुष्ट आत्मा काम कर रही थी। जिस किसी ने भी रोम के इतिहास का अध्ययन किया है, उसे पता होगा कि रोम के गणतंत्रवादी संविधान में सांप्रदायिक अधिनिर्णय से बहुत अधिक मिलते-जुलते तत्व थे। जब रोम में राजशाही का उन्मूलन हुआ तो राजसी सत्ता या परसत्ता (इम्पीरियम) कांसुलों और पोंटिफेक्स मेक्सिमस के बीच विभक्त हो गई थी। कांसुलो में राजा का धर्मनिरपेक्ष प्राधिकार निहित था, जब कि पोंटिफेक्स मेक्सिमस ने राजा का धार्मिक प्राधिकार ग्रहण किया था। इस गणतंत्रवादी संविधान ने कांसुलों का प्रावधान किया था। एक था पेट्रिशियन और दूसरा था प्लेबियन। उसी संविधान में पोंटिफेक्स मेक्सिमस के अधीन पादरियों की भी व्यवस्था थी, जिनमें से आधे प्लेबियन और आधे पेट्रिशियन होते थे। इसका क्या कारण है कि रोम के गणतंत्रवादी संविधान में ये प्रावधान थे जो कि, जैसा कि मैंने बताया था, सांप्रदायिक अधिनिर्णय के प्रावधानों से इतने अधिक मिलते हैं? इसका एक ही उत्तर मिल सकता है कि रोम गणतंत्र के संविधान को पेट्रिशियनों तथा प्लेबियनों के बीच सामाजिक विभाजन को ध्यान में रखना पड़ा था। पेट्रिशियन और प्लेबियन, ये दो स्पष्ट जातियां थीं। सार रूप में हम कह सकते हैं कि राजनीतिक सुधारकों को जिस दिशा में वे जाना चाहें, जाने दें। इससे उन्हें पता चलेगा कि संविधान तैयार करने में वे प्रचलित सामाजिक व्यवस्था से उत्पन्न समस्या की उपेक्षा नहीं कर सकते।

इस प्रस्ताव के समर्थन में कि सामाजिक और धार्मिक समस्याओं का राजनीतिक संविधानों पर प्रभाव पड़ता है, मैंने जिन उदाहरणों को प्रस्तुत किया है, वे अधिक विस्तृत प्रतीत होते हैं। मैं समझता हूं कि ऐसा ही है। किंतु यह नहीं मानना चाहिए कि एक का दूसरे पर पड़ने वाला प्रभाव सीमित होता है। दूसरी ओर, यह कहा जा सकता है कि इतिहास सामान्यतः इस प्रस्ताव को बल देता है कि राजनीतिक क्रांतियां हमेशा सामाजिक और धार्मिक क्रांतियों के बाद हुई हैं। लूथर द्वारा आरंभ किया गया धार्मिक सुधार यूरोप के लोगों की राजनीति मुक्ति का अग्रदूत था। इंग्लैंड में प्यूरिटनवाद के कारण राजनीतिक स्वतंत्रता की स्थापना हुई।

चन्द्रगुप्त द्वारा संचालित राजनीतिक क्रांति से पहले भगवान बुद्ध की धार्मिक और सामाजिक क्रांति हुई थी। शिवाजी के नेतृत्व में राजनीतिक क्रांति भी महाराष्ट्र के संतों द्वारा किए गए धार्मिक और सामाजिक सुधारों के बाद हुई थी। सिखों की राजनीतिक क्रांति से पहले गुरु नानक द्वारा की गई धार्मिक और सामाजिक क्रांति हुई थी।

प्यूरिटनवाद ने नए विश्व की स्थापना की। प्यूरिटनवाद ही ने अमरीकी स्वतंत्रता संग्राम को जीता। प्यूरिटनवाद एक धार्मिक आंदोलन था। यही बात मुस्लिम साम्राज्य के संबंध में भी सत्य है। अरबों के राजनीतिक सत्ता बनने से पहले वे पैगम्बर मुहम्मद साहब द्वारा आरंभ संपूर्ण धार्मिक क्रांति से गुजरे थे। यहां तक कि भारतीय इतिहास भी उसी निष्कर्ष का समर्थन करता है। चन्द्रगुप्त द्वारा संचालित राजनीतिक क्रांति से पहले भगवान बुद्ध की धार्मिक और सामाजिक क्रांति हुई थी। शिवाजी के नेतृत्व में राजनीतिक क्रांति भी महाराष्ट्र के संतों द्वारा किए गए धार्मिक और सामाजिक सुधारों के बाद हुई थी। सिखों की राजनीतिक क्रांति से पहले गुरु नानक द्वारा की गई धार्मिक और सामाजिक क्रांति हुई थी। यहां और अधिक दृष्टांत देना अनावश्यक है। इन दृष्टांतों से यह बात प्रकट हो जाएगी कि मन और आत्मा की मुक्ति जनता के राजनीतिक विस्तार के लिए पहली आवश्यकता है। □

अगले अंक में जारी.....

युगद्रष्टा बाबासाहेब डॉ. बी.आर. अम्बेडकर

▪ कन्हैयालाल चंचरीक

डॉ. अम्बेडकर ने अमेरिका और इंग्लैंड में उच्च शिक्षा प्राप्त की थी। वे ऊंचे दर्जे के समाजविद् और विधि-वेत्ता थे। बीसवीं सदी के प्रथम अर्द्ध भाग में उच्च शिक्षा और वैचारिकता के क्षेत्र में उनका कोई बराबरी नहीं कर सकता था। वंचित वर्ग का होने से उन्हें सामाजिक वर्जनाओं को झेलना पड़ा था, लेकिन वे हिमालय की तरह अडिग रहे। करोड़ों दलित अस्पृश्यों के वे चहेते बन गए। उनके मुक्ति दाता बन गए।

भारत की सदियों से प्रचलित जाति व्यवस्था और धार्मिक मान्यताओं का उन्होंने गहन अध्ययन किया था। वे समतामूलक समाज एवं सामाजिक परिवर्तन के पक्षधर थे। स्वतंत्र भारत के संविधान की संरचना में उनका सर्वाधिक योगदान था। आज उन्हें संविधान निर्माता के रूप में याद किया जाता है। जहां भी संवधानिक गतिरोध, सामाजिक न्याय, वंचितों को अधिकारिता की बात उठती है वे याद किए जाते हैं। 14 अप्रैल का पावन दिवस करोड़ों वर्षों से पीड़ित असहायों की मुक्ति का दिवस है। न्याय-व्यवस्था के रक्षक न्यायालयों को भी संविधान निर्माता के इस पवित्र दिवस को प्रतिवर्ष उत्साह से मनाना चाहिए।

हम यहां डॉ. अम्बेडकर की सप्तक्रांतियों का संक्षिप्त वर्णन कर रहे हैं।

डॉ. अम्बेडकर की सात क्रांतियां

डॉ. अम्बेडकर ने स्वतंत्र भारत के संविधान की रचना कर दलित जातियों में नव जीवन का संचार किया। उनकी सदियों की दासता मिटा दी। उनके सामाजिक-राजनैतिक उत्कर्ष का

राजनीतिक उदय का प्रारंभ एक इतिहास बन गया है। 20वीं सदी के तृतीय दशक में यद्यपि उनका कार्य क्षेत्र महाराष्ट्र और दलित मराठा 'महार' जाति तक सीमित था, लेकिन जेम्स पैलेस, लंदन में संपन्न गोल मेज परिषद (1930-32) में भारत के शीर्ष नेताओं की उपस्थिति में दलितों के अधिकारों को उनकी आवाज़ की गूँज पूरे विश्व में सुनाई दी। गोल मेज परिषद वार्त्ता के निर्णयों के क्रियान्वयन के संदर्भ में ब्रिटिश प्रधानमंत्री रैमजे मैकेडानल्ड द्वारा मार्च, 1932 में घोषित 'कम्युनल-अवार्ड' में दलितों को जब हिन्दुओं से अलग प्रतिनिधित्व आदि प्रदान करने की बात चली तो गांधी जी ने यरवदा जेल में आमरण अनशन शुरू कर दिया। बाद में हिन्दू नेताओं के साथ गांधी जी की प्राणरक्षा हेतु उनकी सहमति से डॉ. अम्बेडकर का समझौता हुआ और तभी से दलित उत्कर्ष और अस्पृश्यता निवारण का कार्यक्रम राष्ट्रव्यापी बना। राष्ट्रीय नेतृत्व का मानना था कि प्रजातंत्र में ही सहस्रों वर्ष की गुलामी की मार झेल रहे दलित अपना भविष्य सुनिश्चित कर सकते हैं।

यद्यपि सामंती, ब्राह्मणवादी और मनुवादी सोच का पूरी तरह मूलोच्छेद नहीं हो पाया लेकिन बाबासाहेब जो बीज मंत्र दे गए वह एक दिन अपना प्रभाव अवश्य दिखाएगा।

सन् 1942 में द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान डॉ. अम्बेडकर वायसराय की कार्यकारिणी के सदस्य बने। इससे दलितों में नव आशा उदित हुई।

विश्व स्तर पर तेजी से बदलते राजनीतिक घटनाक्रम में सन् 1947 में भारत स्वतंत्र हुआ। स्वतंत्र भारत का नया संविधान बना जिसका श्रेय डॉ. अम्बेडकर को दिया जाता है। 26 जनवरी 1950 को भारतीय संविधान लागू हुआ, इससे समानता, स्वाभिमान, सामाजिक न्याय और परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त हुआ। दलितों की मुक्ति की यह एक लंबी गाथा है। इस संदर्भ में हम संक्षेप में डॉ. अम्बेडकर के क्रांतिदर्शी विचारों को सात क्रांतियों के रूप में परख सकते हैं:-

(1) शैक्षिक क्रांति की पहल- डॉ. अम्बेडकर ने बीसवीं सदी के द्वितीय दशक में स्वयं अमेरिका और इंग्लैण्ड में उच्च शिक्षा प्राप्त की थी। विश्व के महान् और योग्यतम प्रतिभावान् महापुरुषों की अग्रपंक्ति में उन्होंने अपना नाम सार्थक किया।

साथ ही अपने अनुयायियों और दलित बंधुओं को उच्च शिक्षा ग्रहण करने के लिए प्रोत्साहित किया और शैक्षिक क्रांति का बीज बोया। आज भारत में उनके नाम से नए महाविद्यालय, विश्वविद्यालय और उच्च शोध संस्थान स्थापित करने में

भारतवासी अपना परम सौभाग्य समझते हैं।

(2) राजनीतिक अधिकारों की क्रांति– दलितों के राजनीतिक अधिकारों की क्रांति थी। पांच हजार साल से राजनीतिक अधिकार से वंचित दलित समाज के लिए उन्होंने भारी संघर्ष किया और संवैधानिक राजनीतिक अधिकार दिलाए। सन् 1930–31 में उच्चाधिकार प्राप्त साउथबरो समिति के सदस्य की हैसियत से भारत में घूमकर अनुसूचित जातियों–जनजातियों की वैज्ञानिक ढंग से सूची बनाई जो सन् 1935 के भारत अधिनियम के साथ आज भी मान्य है। इससे करोड़ों दलित शिक्षित होकर अपने राजनीतिक अधिकारों के लिए सजग हुए। संसद–विधान सभा से लेकर ग्राम पंचायत स्तर तक राजनीतिक अधिकार प्राप्त करने में सफल हुए।

(3) वैचारिक क्रांति– यह डॉ. अम्बेडकर की तीसरी क्रांति थी। इससे शिक्षा और राजनैतिक अधिकार प्राप्त करके दलितों में वैचारिक क्रांति का मार्ग प्रशस्त हुआ। वे समता, सामाजिक न्याय, और समतामूलक समाज की स्थापना के लिए कटिबद्ध हुए। उनमें आत्मसम्मान और अपनी नई पहचान के लिए सजगता आई। आत्म–विश्वास और अभिमान जाग्रत हुआ।

(4) सामाजिक क्रांति– वैचारिक क्रांति के साथ साथ डॉ. अम्बेडकर ने सामाजिक क्रांति का बिगुल बजाया। यह उनकी चौथी क्रांति थी। सामाजिक समता, सामाजिक न्याय और अधिकारिता का मंत्र घोष फूंका। आज करोड़ो वर्षों से शोषित पीड़ित अस्पृश्य जातियां जिन्हें अब दलित तथा संवैधानिक तौर पर अनुसूचित जाति कहा जाता है नव जागृति और सामाजिक परिवर्तन का अनुभव कर रही हैं। भले ही उनके उत्कर्ष की मंथर गति है लेकिन एक समय ऐसा भी आएगा जब करोड़ों दलित क्रांति के वाहक बनेंगे। निसंदेह भारत में दलित क्रांति दहलीज पर है। उसे गतिशील बनाने के लिए ऊर्जावान् नेतृत्व उभर कर नहीं आया है। दलित सर्वहारा वर्ग के युवा–विचारवान क्रांतिदर्शी जब जाग उठेंगे तो भारत का मानचित्र ही कुछ और होगा।

(5) संवैधानिक क्रांति– बाबासाहेब ने भारत की स्वतंत्रता, अखंडता, संप्रभुता और प्रजातांत्रिक व्यवस्था को दृढ़ करने के लिए संवैधानिक क्रांति की। यह उनकी पांचवीं क्रांति थी। स्वतंत्र भारत का जो प्रथम संविधान रचा गया उसका श्रेय उन्हें जाता है। वे भारत के नए संविधान के जन्मदाता हैं। वे सहस्रों वर्षों के राजसी, सामंती, मनुवादी दासता के कुचक्र को तोड़ने में सफल हुए। उन्होंने प्रजा मूल्यों की स्थापना के लिए संविधान के अंतर्गत अनेक प्रावधान किए।

(6) धार्मिक क्रांति– बाबासाहेब के विचारों ने जो छठवीं क्रांति की वह प्रधानतः धार्मिक क्रांति है। वह बौद्ध धर्म का पुनरोदय है। उन्होंने 14 अक्टूबर 1956 को बुद्ध पूर्णिमा के दिन नागपुर में अपने देश–विदेश के लाखों अनुयायियों को साथ लेकर हिन्दू धर्म के परित्याग की घोषणा की और बौद्ध धर्म अपनाया। इतिहास में 2550 वर्ष बाद यह धर्म परिवर्तन की घटना एक ऐतिहासिक क्रांति थी। दलित मुक्ति का प्राणवान् ऐतिहासिक कदम था। हिन्दू धर्म द्वारा थोपे गए सभी प्रतिबंधों, अयोग्यताओं से छुटकारा पाने का निश्चय था। दरअसल ऐसी धार्मिक घटना या क्रांति विश्व के इतिहास में कभी घटित नहीं हुई। इसकी प्रतिध्वनि पूरे विश्व में सुनी गई। दलितों द्वारा बौद्ध धर्म अपनाने से नव बौद्ध बनने का स्वर्णिम अवसर प्राप्त हुआ। इससे हिन्दू धर्म के सभी अंधविश्वास, परंपरागत कुसंस्कार, जाति व्यवस्था, अस्पृश्यता, ऊंचनीच, देवी–देवतावाद सभी स्वतः खत्म हो गए।

(7) आर्थिक क्रांति– डॉ. अम्बेडकर की सातवीं क्रांति आर्थिक उत्कर्ष से संबंधित है। बाबासाहेब ने स्पष्टतः घोषित किया कि शिक्षित बनो, संगठित रहो और संघर्षशील बनो। गाँव–घेट्टो छोड़ो, गाँवों के रूप में दलित बाड़ों–चालों को तोड़ो, नगरों की ओर बढ़ो। इसी से आर्थिक संपन्नता के रास्ते भी खुल जाएंगे। अन्यथा सामंती समाज में जहां उत्पादन के समस्त साधन, उद्योग धंधे, कृषि भूमि, बड़ी नौकरियाँ, शिक्षा से सिंचित आवास स्थल द्विजजातियों ने हथिया रखे हैं उन्हीं के हाथों में बने रहेंगे। उस एक चक्रव्यूह को तीन बीज मंत्रों शिक्षा, संगठन, संघर्ष के सहारे बांधा जा सकता है। उनके क्रांति में अनेक व्यवधान आड़े आ रहे हैं।

मार्क्सवाद को अव्यवहारिक बताया

डॉ. अम्बेडकर ने मार्क्सवाद को अव्यवहारिक मानते हुए उसे नकार दिया है और रूस–चीन जैसे खुलकर शांतिप्रिय–प्रजातांत्रिक ढंग से सामाजिक–राजनीतिक क्रांति के मार्ग को चुना। उन्होंने दलित अधिकारों की बात को प्राथमिकता दी। संविधान के तौर पर कतिपय सुविधाओं के माध्यम से दलित समाज में थोड़ा–सा बदलाव आया। यहां राजनीतिक अधिकार प्राप्त हैं, लेकिन आर्थिक–सामाजिक अधिकार मिलना अभी शेष है। यह चिंता का विषय है।

आज यूरोप, अमेरिका, जापान, आस्ट्रिया और अन्य एशियाई देशों के शोधवेत्ता भारत व राजनीतिक दलित क्रांति पर आश्चर्य प्रकट करते हैं। दो–तीन दशक पूर्व लंदन के बुक स्टोरों पर 'दलित क्रांति' विषयक शोध अध्ययन बहुतायत से मिलते थे। यह दलित क्रांति नया रूप वर्ण, प्रजातांत्रिक ढंग से अपने मार्ग की खोज में है। □

(लेखक दलित आंदोलन, संस्कृति, समाज आदि विषयों पर दर्जनों पुस्तकें लिख चुके हैं।)

शिक्षाशास्त्री डॉ. अम्बेडकर

▪ डॉ. धर्मकीर्ति

संस्कृत भाषा में एक लोकोक्ति बहुत प्रसिद्ध है और वह यह है 'न भूतो न भविष्यति', अर्थात् न भूतकाल में हुआ है और न भविष्य में होगा। भारतवर्ष में विद्वानों के द्वारा मान्य स्वामी विवेकानंद, रवीन्द्रनाथ टैगोर, गांधीजी, डॉ. राधाकृष्णन् और डॉ. जाकिर हुसैन जैसे अनेक शिक्षाशास्त्री हो चुके हैं, लेकिन ये सभी अध्यात्मवाद के अधिक समीप और व्यवहारवाद से अधिक दूर थे। इन शिक्षाशास्त्रियों से भिन्न डॉ. अम्बेडकर महान् शिक्षाविद् जॉन डिवी की विचारधारा से अत्यधिक प्रभावित होने के कारण शिक्षा में व्यवहारवाद के काफी समीप थे, जिससे उन्होंने शिक्षा के माध्यम से दलितों, शोषितों और अस्पृश्यों की समस्याओं का समाधान करके उन्हें सच्चे अर्थों में इंसान बनना सिखाया।

अध्यात्मवादी शिक्षा की परिभाषाएं, मान्यताएं, शैक्षणिक साध्य, शिक्षण पद्धतियां और शिक्षण सामग्री वेदों के कर्मकाण्डों, उपनिषदों में प्रदत्त ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, परमात्मा एवं मोक्ष के इर्द-गिर्द घूमती रहती हैं। अध्यात्मवादी शिक्षाशास्त्रियों के सिद्धांतों में आध्यात्मिक तत्व अर्थात् ब्रहा, ईश्वर, आत्मा आदि प्राथमिक और इनके अतिरिक्त अन्य तत्व द्वैतयिक एवं अप्रधान होते हैं। आध्यात्मवादी शिक्षाशास्त्रियों के सिद्धांतों में यह बहुत बड़ा लोक विरुद्ध कथन उनकी मान्यता है। उसका सबसे बड़ा कारण यह है कि उनकी शिक्षा का केंद्र बिंदु आत्मा, आत्मतत्व के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति करके ईश्वर के समीप जाकर सान्निध्य प्राप्त करना और ब्रह्म में लीन हो जाना है। ऐसी शिक्षा से मानव-जाति में उत्पन्न होने वाली समस्याओं के समाधान का मार्ग प्रशस्त नहीं हो पाता। यदि आज की 21वीं शताब्दी के वैज्ञानिक युग में इस प्रकार की शिक्षा की अध्यात्मवादी परिकल्पना की जाती है, तो उसे दिवास्वप्न में देखे गए मूर्खों के स्वर्ग के अतिरिक्त कुछ नहीं कहा जा सकता।

यदि भारतीय शिक्षाशास्त्र के इतिहास का गंभीर एवं वस्तुनिष्ठ अध्ययन किया जाए, तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि संस्कृत भाषा की यह लोकोक्ति 'न भूतो न भविष्यति' भारत के महानतम शिक्षाशास्त्री डॉ. बी.आर. अम्बेडकर पर निरपेक्ष रूप में खरी उतरती है। इसका दार्शनिक एवं वैज्ञानिक कारण यह है कि दुनिया का अस्तित्व आत्मतत्व, ईश्वर एवं ब्रह्म जैसे काल्पनिक प्रत्ययों पर निर्भर नहीं करता, बल्कि वह अनित्य, अनात्म, अनीश्वर, अब्रह्म एवं प्रतीत्य समुत्पाद के नियम पर निर्भर करता है। इस जगत के अस्तित्व का एक मात्र कारण मनुष्य है और यदि मनुष्य अस्तित्व में आया हुआ नहीं होता, तो जगत का अस्तित्व भी कदापि संभव नहीं हो पाता। इस स्थिति में डॉ. अम्बेडकर के द्वारा अध्यात्मवादियों की भांति शिक्षा का सर्वोच्च साध्य आत्मा के द्वारा परमात्मा, ईश्वर व मोक्ष की प्राप्ति करके ब्रह्म और अद्वैत में विलीन हो जाना नहीं है, बल्कि उनकी शिक्षा का केन्द्र बिंदु भगवान बुद्ध की भांति केवल मनुष्य, मनुष्य के दुखों का ह्रास एवं मानव-कल्याण करते हुए 'बहुजन-हिताय, बहुजन-सुखाय लोकानुकम्पाय' था। यह केवल भौतिक जगत में रहकर ही संभव हो सकता है। इसलिए डॉ. अम्बेडकर के शिक्षाशास्त्र की नींव अध्यात्मवादी मूल्य नहीं, बल्कि व्यवहारवादी मूल्य है।

डॉ. अम्बेडकर का शिक्षाशास्त्र मानवतावादी मूल्यों पर निर्भर करता है और उनसे ओतप्रोत है। ये मूल्य आपस में एक-दूसरे के पर्याय और दूध एवं पानी की तरह इस प्रकार मिले हुए हैं, जिन्हें एक-दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता डॉ. अम्बेडकर के मानवतावादी शिक्षाशास्त्र के विकास की पृष्ठभूमि के बारे में ज्ञात किया जाए, तो यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि वे स्वयं वर्तमान भारत के प्रबुद्ध, प्रज्ञावान, उच्चकोटि के अध्ययनशील और उच्च शिक्षा प्राप्त शिक्षाशास्त्री थे। उन्होंने न्यूयार्क अमरीका में स्थित कोलंबिया विश्वविद्यालय में प्रतिदिन 18 घण्टे अध्ययन करके 'एडमिन्स्ट्रेशन एण्ड फाइनेंस ऑफ ईस्ट इण्डिया कम्पनी' नामक विषय पर एम.ए. की उपाधि के लिए शोध-प्रबंध प्रस्तुत किया और उन्होंने 2 जून 1915 को एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की।

इसी विश्वविद्यालय के प्रोफेसर (डॉ.) ए.ए. गोल्डन वेअर के द्वारा आयोजित सेमिनार में 'कास्ट्स इन इण्डिया-देअर मैकेनिज्म जैनेसिस एण्ड डेवलपमेंट' नामक निबंध मानवशास्त्र के छात्रों के समक्ष पढ़ा था। यह लेख उनकी शोध-कृतियों में सर्वप्रथम पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुआ था। जून 1916 को पीएच.डी. की उपाधि हेतु 'दि नेशनल डिव्हडेंट आफ इण्डिया : ए हिस्टोरीकल एण्ड ऐनालिटिकल स्टडी' नामक शोध-प्रबंध कोलंबिया विश्वविद्यालय में प्रस्तुत किया। 20 जून, 1921 को 'प्रोव्हिन्सिल ऑफ इम्पीरियल फाइनेंस इन इण्डिया' नामक शोध-प्रबंध पर लंदन विश्वविद्यालय द्वारा उन्हें एम.एससी. की उपाधि प्रदान की गई और लगभग एक वर्ष

के उपरांत लंदन की ग्रेज इन संस्था के द्वारा उन्हें कानून की बार-एट-लॉ की उपाधि प्रदान की गई। इतनी संख्या में शैक्षिणक उपाधियां प्राप्त करने के उपरांत डॉ. अम्बेडकर की ज्ञान प्राप्त करने की तीव्र अभिलाषा शांत नहीं हुई। इसी मध्य उन्होंने कठोर परिश्रम किया और लगभग 16 माह के संक्षिप्त समय में उन्होंने 'दि प्रोब्लम ऑफ रूपी' नामक शोध-प्रबंध लंदन विश्वविद्यालय में प्रस्तुत कर दिया, जिसके स्वीकृति होने के उपरांत उन्हें डी. एससी. की उपाधि प्रदान की गई।

डॉ. अम्बेडकर के द्वारा भारतीय संविधान की रचना करके महान एवं विश्व प्रसिद्ध कार्य किया। यह कोलंबिया विश्वविद्यालय के लिए बड़े ऐतिहासिक और गौरव की बात थी कि उनके पूर्व छात्र ने इतना प्रशंसनीय कार्य किया। डॉ. अम्बेडकर के द्वारा इस प्रकार का विश्व प्रसिद्ध एवं महान कार्य किए जाने पर कोलंबिया विश्वविद्यालय ने उनका अभिनंदन करने के लिए 'डॉक्टर ऑफ लॉ' की सम्मानप्रद मानद उपाधि प्रदान करके स्वयं एवं डॉ. अम्बेडकर को गौरवान्वित किया। भारत के लिए शिक्षा के क्षेत्र में यह एक महान एवं ऐतिहासिक उपलब्धि थी। भारत के तत्कालीन उपराष्ट्रपति और महान शिक्षाशास्त्री डॉ. राधाकृष्णन् के द्वारा इसका महत्त्व समझते हुए अत्यंत हर्ष का अनुभव हुआ और उन्होंने डॉ. अम्बेडकर को बधाई देते हुए अपने हृदय के उद्गार व्यक्त करते हुए कहा, "मैं समाचार पत्र में यह पढ़कर बहुत प्रसन्न हूं कि कोलंबिया विश्वविद्यालय आपको डॉक्टर ऑफ लॉ की मानद उपाधि से सम्मानित कर रहा है। हमारे संविधान के लिए आपके द्वारा किए गए महान कार्य की यह समुचित मान्यता है। मेरी हार्दिक बधाई...।" यह भी भारत के लिए कितने हर्ष, सम्मान और गौरव की बात है कि कोलंबिया विश्वविद्यालय ने अपने शताब्दी वर्ष के उपलक्ष में कैम्पस में अपने भूतपूर्व छात्र बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर की स्मृति में सुन्दर मूर्ति की स्थापना की और उनकी प्रशंसा में प्रशस्ति बनवाकर लगवाया। डॉ. अम्बेडकर महानतम शैक्षणिक उपलब्धियों के फलस्वरूप 12 जून, 1953 को उस्मानिया विश्वविद्यालय के द्वारा उन्हें डी. लिट् (डॉक्टर ऑफ लिट्रेचर) की मानद उपाधि से सुशोभित किया गया था।

डॉ. अम्बेडकर विश्व प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री जॉन ड्यूवी और शिक्षा में उनके व्यवहारवाद के सिद्धांत से अत्यधिक प्रभावित थे। डॉ. अम्बेडकर की अटूट शैक्षणिक मान्यता थी कि शिक्षा प्राप्त करना किसी वर्ण, वर्ग और जाति विशेष की बपौती एवं पैतृक सम्पत्ति के समान नहीं है, बल्कि शिक्षा को सभी के लिए सार्वभौमिक होना चाहिए। इस बात को उन्होंने प्रमाणित कर दिया कि वे महार जैसी अस्पृश्य जाति में उत्पन्न होने के उपरांत भी अपने युग के उच्चकोटि के शिक्षा प्राप्त एवं प्रज्ञावान व्यक्ति थे। यह तथ्य इस बात से प्रमाणित होता है कि भूतपूर्व प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू के मंत्रिमण्डल में ही नहीं, बल्कि समस्त भारत में एक भी सवर्ण हिन्दू, मुसलमान और ईसाई नहीं था, जो भारत के संविधान की रचना करने में सक्षम होता। इससे डॉ. अम्बेडकर की शैक्षणिक योग्यता एवं शिक्षाशास्त्र में दक्षता प्रमाणित होती है। डॉ. अम्बेडकर के द्वारा शिक्षाशास्त्री के रूप में अपना जीवन 10 अध्यापन के लिए सिडनहॅम कॉलेज ऑफ कॉमर्स, मुंबई में प्राध्यापक के पद पर हुई थी। इसके उपरांत 1 जून, 1935 में शासकीय लॉ कॉलेज मुंबई में प्राचार्य नियुक्त हुए।

डॉ. अम्बेडकर के युग में शिक्षा सार्वभौमिक नहीं थी। शिक्षा को सार्वभौमिक बनाने के लिए उन्होंने 8 जुलाई, 1945 को मुंबई में 'पीपुल्स एजुकेशन सोसाइटी' की स्थापना की, मुख्यरूप से जिसका कार्य शिक्षा को सार्वभौमिक बनाना और दलितों, शोषितों एवं अस्पृश्यों आदि में शिक्षा का प्रचार-प्रसार करना था। इस संस्था के द्वारा 3 अक्टूबर, 1945 को पूना में 'डॉ. अम्बेडकर स्कूल ऑफ पोलिटिक्स' नामक शिक्षा संस्था खोली गई। जून 1946 में पीपुल्स एजूकेशन सोसाइटी ने मुंबई के फोर्ट क्षेत्र में सिद्धार्थ कॉलेज ऑफ आर्ट्स, सिद्धार्थ कॉलेज ऑफ कॉमर्स, सिद्धार्थ कॉलेज ऑफ लॉ और 'सिद्धार्थ कॉलेज ऑफ साइंस की स्थापना की। 19 जून, 1950 ई. को औरंगाबाद, महाराष्ट्र में मिलिन्द कॉलेज का आरंभ किया गया, जिसका शिलान्यास भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के द्वारा किया गया था। महान व्यवहारवादी शिक्षाशास्त्री डॉ. अम्बेडकर के परिश्रम एवं प्रयासों का ही फल है कि फल है कि उनके द्वारा स्थापित पीपुल्स एजूकेशन सोसाइटी के द्वारा आज संपूर्ण महाराष्ट्र में लगभग 30 कॉलेज/शिक्षण संस्थाएं सुचारू एवं आदर्श रूप में चलकर श्रेष्ठ उपलब्धियां प्राप्त करके महानतम शिक्षाशास्त्री डॉ. अम्बेडकर के स्वप्न को पूरा करने में लगी हुई हैं। आधुनिक भारत में एक भी ऐसा शिक्षाशास्त्री नहीं है, जिसने डॉ. अम्बेडकर के समान शिक्षा के क्षेत्र में श्रेष्ठतम उपलब्धियां प्राप्त की हों।

डॉ. अम्बेडकर के द्वारा 24 जुलाई, 1924 को बहिष्कृत हितकारिणी सभा का गठन किया गया था। इस सभा के उद्देश्यों में से एक उद्देश्य है 'शिक्षित बनो, संघर्ष करो और संगठित रहो'। आज डॉ. अम्बेडकर के परिश्रम और प्रेरणा से ही भारत में दलितों, शोषितों और अस्पृश्यों की सैकड़ों शिक्षण संस्थाएं सुचारू रूप से चल रही है। इतना ही नहीं, बल्कि उनके ही प्रयास और संघर्ष के परिणामस्वरूप अनुसूचित जातियों और पिछड़े वर्ग के लोगों में शिक्षा का प्रचार-प्रसार बड़ी तीव्र गति से हो रहा है, जिसके फलस्वरूप इन वर्गों के लोग

उच्चकोटि की शिक्षा प्राप्त करके विश्वविद्यालयों में कुलपति, प्रोफेसर, आई.ए.एस., आई.पी.एस., डॉक्टर, इंजीनियर और अन्य उच्च श्रेणी की सेवाओं में सेवारत हैं। लेकिन खेद इस बात का है कि बाबासाहेब ने जो स्वप्न देखा था, उस स्वप्न को पढ़े-लिखे पूरा नहीं कर पा रहे हैं और सुविधाभोगी होकर अपने पेट भरने में लगे हुए हैं। इस प्रकार के लोगों के बारे में उन्होंने कहा था-"मेरे पढ़े-लिखे लोगों ने मुझे धोखा दिया है।" सुविधाभोगी होने के कारण उन्होंने संगठन और संघर्ष को भुला दिया है।

डॉ. अम्बेडकर ने भारतीय शिक्षा के बारे में यह निष्कर्ष प्राप्त किया कि अपने बच्चों की शिक्षा के मामले में हमारी प्रगति बहुत धीमी है। भारत सरकार के द्वारा उनके समय में शिक्षा की प्रगति के बारे में एक रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी, उसे पढ़कर उन्हें बड़ा दुख हुआ था और कहा था कि यदि शिक्षा की गति इसी प्रकार से चलती रही, तो स्कूल जाने वाली उम्र के लड़कों को 40 और लड़कियों को 300 वर्ष शिक्षित बनाने में लगेंगे। इस समस्या के समाधान के लिए डॉ. अम्बेडकर का सुझाव था कि सरकार को इसी अनुपात में बजट में धन की स्वीकृति करनी चाहिए।

भारत के विद्यालयों में नैतिक मूल्यों में दिन-प्रतिदिन ह्रास होता चला जा रहा है। आज स्थिति और भी बिगड़ी हुई एवं अधिक गंभीर है। विद्यालयों में अध्यापकों के द्वारा बीड़ी-सिगरेट पीना और गुटका-तम्बाकू का प्रयोग आम बात हो गई है। यदाकदा अध्यापकों के द्वारा विद्यालयों में शराब पीने की घटनाओं की शिकायतें आती रहती हैं। इतना ही नहीं, कभी-कभी अध्यापकों के द्वारा छात्रों के साथ अप्राकृतिक यौनाचार और छात्राओं के साथ बलात्कार के समाचार टी.वी. न्यूज चैनलों पर और समाचार पत्रों में आते रहते हैं। डॉ. अम्बेडकर ने इस स्थिति से बचाव के लिए विद्यालयों में नैतिक शिक्षा देने और अध्यापकों के द्वारा नैतिक आचरण करने पर बल दिया था, जिससे छात्र उनका अनुशीलन कर सकें।

नैतिक शिक्षा के बारे में डॉ. अम्बेडकर ने कहा था-"शिक्षा का काम लोगों को नैतिकता सिखाना और उनको समाज में रहने लायक बनाना है।" शिक्षा के उद्देश्य व कार्य ऐसे होने चाहिए, जिससे पता चले कि वहां दी जाने वाली नैतिक शिक्षा वयस्कों के लिए उपयुक्त है, कि यह अपने चरित्र में वैज्ञानिक और पक्षपातरहित हो, कि इसका उद्देश्य विद्यार्थी के मस्तिष्क में केवल तथ्य और सिद्धांतों को भरना नहीं होना चाहिए, अपितु उसके व्यक्ति और मानसिक स्थिति को सुदृढ़ करने वाला होना चाहिए, कि यह विद्यार्थी को मुख्य रूप से समीक्षात्मक अध्ययन का आदी बनाती है तथा उसके मस्तिष्क में एक संपूर्णता का स्तर बनाती है और उसे कठिनाई की दिशा में जूझते हुए सत्य तक पहुंचने का अर्थ देती है।

शिक्षा का सर्वोच्च साध्य चरित्र निर्माण होता है, इसलिए शिक्षा की अपेक्षा चरित्र अधिक महत्वपूर्ण होता है। इसलिए डॉ. अम्बेडकर कहते हैं-''शिक्षा धारी शस्त्र होने के कारण उसे चलाना खतरनाक है। चरित्रहीन और शीलहीन शिक्षित मनुष्य पशु से भी अधिक भयंकर होता है। यदि शिक्षित मनुष्य की शिक्षा दलित, शोषित एवं निर्धन जनता के विरूद्ध होती है, तो वह समाज के लिए शाप बन जाएगी ऐसे शिक्षितों को धिक्कार है। इसलिए शिक्षा की अपेक्षा चरित्र अधिक महत्वपूर्ण होता है।''

आज भारत के विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में जो शिक्षा प्रदान की जा रही है, उससे विद्यार्थियों के मस्तिष्क में जितनी तेजी से वैज्ञानिक एवं वस्तुनिष्ठ तथ्य ठूंस-ठूंस कर भरे जाते हैं, उतनी ही तीव्र गति से नैतिक मूल्यों एवं चरित्र का ह्रास हो रहा है। इस स्थिति से उद्धार के लिए आवश्यक है कि डॉ. अम्बेडकर के शिक्षा-सिद्धांतों का अनुशीलन किया जाए। □

(लेखक दिल्ली के शिक्षा निदेशालय में अतिरिक्त शिक्षा निदेशक रह चुके हैं।)

रचनाएं आमंत्रित हैं

सामाजिक न्याय संदेश में आमंत्रित हैं बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर पर शोधपरक गंभीर व विश्लेषणात्मक लेख, कविताएं, कहानियां, आदि रचनाएं और दलित साहित्य व दलित विमर्श पर सामग्री। अस्वीकृत रचना की वापसी के लिए साथ में डाक टिकट लगा अपना पता लिखा लिफाफा लगाना न भूलें। रचनाओं के मौलिक, अप्रसारित व अप्रकाशित होने का प्रमाण पत्र भी संलग्न करें।

-सम्पादक
सामाजिक न्याय संदेश
15, जनपथ, नई दिल्ली-110001
टेली : 011-23320589

डॉ. अम्बेडकर की राष्ट्र-निर्माण की नई संकल्पना

■ डॉ. तेज सिंह

राष्ट्र-मुक्ति आन्दोलन के दौर में देश का हरेक नागरिक, राजनेता, विचारक और चिंतक राष्ट्र के नवनिर्माण का सपना देख रहा था। उन सबके सामने यह सवाल था कि आजादी के बाद देश का नवनिर्माण किस दिशा में किया जाएगा जिससे उनकी आशाएं, आकांक्षाएं फलीभूत हो सकें। और वह काफी हद तक किसी भी आजाद देश की जनता के प्रतिनिधियों द्वारा बनाए गए नये संविधान पर निर्भर करता है। आजादी मिलने से पहले ही संविधान-निर्माण की प्रक्रिया शुरू हुई और संविधान सभा का गठन कर लिया गया। देशी-राज्यों की समस्याओं के अच्छे जानकार होने के नाते डॉ. अम्बेडकर को उम्मीद थी कि देशी-राज्यों की समिति के लिए उन्हें चुन लिया जाएगा। लेकिन इस समिति के लिए उन्हें नहीं चुना गया। इस पर उन्हें कोई अफसोस नहीं हुआ, मगर इस अवसर से वंचित रह जाने पर उन्होंने खेद जरूर प्रकट किया कि वे समिति के सामने अपने विचार पेश नहीं कर सके जिसकी उन्हें उम्मीद थी।

इन्हीं परिस्थितियों में भारतीय अनुसूचित जाति परिसंघ की कार्य-समिति ने उनसे अनुरोध किया कि वे नागरिकों के मूल-अधिकारों, अल्पसंख्यकों और अनुसूचित जातियों के सुरक्षा-उपायों सम्बन्धी ज्ञापन तैयार करें, जिसे भारत का संविधान बनाने वाली संविधान सभा को सौंपा जा सके। डॉ. अम्बेडकर ने ज्ञापन का प्रारूप संविधान के अनुच्छेदों के रूप में 15 मार्च, 1947 को तैयार कर लिया। संविधान सभा में प्रस्तुत करने से पहले ही डॉ. अम्बेडकर ने अपने सवर्ण हिन्दू के आग्रह पर व्यापक रूप से प्रचारित करने के लिए इस ज्ञापन को 'राज्य और अल्पसंख्यक' शीर्षक से प्रकाशित करा दिया जिसमें संयुक्त राज्य भारत के संविधान की विस्तृत रूपरेखा प्रस्तुत की गयी थी।

प्रस्तावित संयुक्त राज्य भारत के संविधान के अनुच्छेद-2 के अनुभाग-2 में खण्ड-4 और उसके स्पष्टीकरण में डॉ. अम्बेडकर ने 'राज्य-समाजवाद' की राज्य-व्यवस्था की अवधारणा प्रस्तुत की थी जो कांग्रेस के समाजवादी गुट की समाजवादी अवधारणा और कम्युनिस्टों की राज्य-व्यवस्था वाली समाजवादी अवधारणा से पूरी तरह अलग थी। हालांकि उन दिनों दुनिया में दो तरह की अर्थव्यवस्थाएं मौजूद थीं। यानी दो तरह के मॉडल थे। एक सोवियत संघ की समाजवादी अर्थ-व्यवस्था तो दूसरी अमेरिका के नेतृत्व वाली पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था। दुनिया पूरी तरह से दो खेमों में बंटी हुई थी। लेकिन भारत के शासक वर्ग ने आजादी के बाद मिश्रित अर्थव्यवस्था का चुनाव किया ताकि वह अपनी सुविधानुसार इन दोनों खेमों की अर्थव्यवस्थाओं का लाभ उठा सके। लम्बे अर्से तक उनका अपने देश के हित में लाभ भी उठाया और अपनी अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाया। समाजवादी खेमे के सोवियत संघ से आर्थिक सहायता लेकर शासक वर्ग ने सार्वजनिक क्षेत्र का विकास और विस्तार किया तो दूसरी तरफ पूंजीवादी खेमे से सहयोग लेकर निजी क्षेत्र को भी प्रोत्साहित किया।

विश्व आर्थिक मंदी के दौर में सोवियत संघ ने समाजवादी अर्थव्यवस्था के आधार पर उन्नति और प्रगति की। उससे डॉ. अम्बेडकर बहुत प्रभावित थे और उसकी अर्थव्यवस्था की कुछ विशेषताओं के आधार पर भारत का आर्थिक विकास और सामाजिक उन्नति चाहते थे ताकि देश की गरीब जनता को आर्थिक शोषण से बचाया जा सके। प्रस्तावित संविधान की विधि के भाग के रूप में कुछ प्रमुख घोषणाएं इस प्रकार हैं: एक-घोषित प्रमुख उद्योग राज्य में स्वामित्व के स्वामित्व में रहेंगे और चलाए जाएंगे। दो, तो प्रमुख उद्योग नहीं हैं पर बुनियादी उद्योग हैं, राज्य के स्वामित्व में सौंपे जाएंगे। तीन, बीमा राज्य के एकाधिकार में रहेगा और राज्य हर वयस्क नागरिक को विवश करेगा कि वह अपनी आय के अनुरूप जीवन पालिसी ले और चार, कृषि राज्य उद्योग होगा जिसके अधीन खेतीबाड़ी सामूहिक फार्म के रूप में की जाएगी और राज्य सामूहिक फार्म की खेती के लिए वित्तीय सहायता देने के लिए बाध्य होगा। आदि-आदि (बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर, संपूर्ण बाङ्मय, खण्ड-2 पृष्ठ-160-181) सबसे बड़ी बात यह थी कि यह योजना संविधान लागू होने की तिथि से 10 वर्ष के भीतर ही यथासंभव लागू हो जाएगी। इससे पता चलता है कि डॉ. अम्बेडकर प्रस्तावित संविधान के प्रति किस तरह समर्पित थे। इससे यह भी स्पष्ट है कि डॉ. अम्बेडकर सोवियत संघ की समाजवादी ढांचे की नियोजित अर्थव्यवस्था की तरह देश का आर्थिक-सामाजिक विकास चाहते थे।

इसके बाद डॉ. अम्बेडकर ने अनुच्छेद-2 के खण्ड-4 के प्रस्तावित उद्देश्य के सम्बन्ध में 'स्पष्टीकरण' शीर्षक के तहत स्पष्ट रूप से बताया कि 'राज्य के ऊपर लोगों के आर्थिक जीवन को इस प्रकार नियोजित करने की जिम्मेदारी डालना है कि उससे उत्पादकता का सर्वोच्च बिन्दु हासिल हो जाए और निजी क्षेत्र के लिए भी रास्ते बन्द न हो, और जिससे सम्पत्ति के समान वितरण की व्यवस्था की जा सके।' (वही, पृष्ठ-193) इस प्रस्तावित योजना से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि डॉ. अम्बेडकर एक नियोजित अर्थव्यवस्था के तहत सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार और विकास चाहते थे, साथ ही साथ निजी क्षेत्र के लिए भी कुछ सीमा तक अवसर चाहते थे ताकि वे एक-दूसरे के पूरक बन सकें। इस तरह वे निजी क्षेत्र (उद्यम) को पूरी तरह बन्द करने के पक्ष में नहीं थे। निजी क्षेत्र को एक सीमा तक ही बढ़ावा देने के पक्ष में थे, जबकि आज इसके उलट हो रहा है। जनता की गाढ़ी कमाई से निर्मित सार्वजनिक क्षेत्र को निजी हाथों में कोड़ियों के भाव बेचा जा रहा है। वह भी आर्थिक सुधारों के नाम पर। सच्चाई यह है कि आजादी के बाद की मिश्रित अर्थव्यवस्था (जो पूंजीवादी अर्थव्यवस्था ही है) ने असमान आर्थिक विकास को ही जन्म दिया है जिसका विकल्प डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित राज्य-समाजवाद है जिसमें राज्य के नियंत्रण में (स्वामित्व और संरक्षण) नियोजित अर्थव्यवस्था द्वारा देश का आर्थिक-सामाजिक विकास सम्भव हो सकता है।

प्रश्न उठता है कि डॉ. अम्बेडकर अपनों प्रस्तावित संविधान में राज्य-समाजवाद (राजकीय समाजवाद) पर इतना जोर क्यों दे रहे थे? इसके कई सामाजिक-आर्थिक कारण रहे हैं। हालांकि यह पूरी योजना आर्थिक जीवन से सम्बन्धित रही है, लेकिन मनुष्यों का केवल आर्थिक जीवन ही नहीं होता बल्कि सामाजिक जीवन भी होता है। यही कारण है कि डॉ. अम्बेडकर की नजरों में मनुष्यों की सामाजिक-आर्थिक जीवन की समस्याएं एक-दूसरे से इस कदर जुड़ी हैं कि उन्हें अलग करके नहीं देखा जाता। खासतौर पर देश की जातिव्यवस्था से उत्पन्न सामाजिक-आर्थिक समस्याओं को देखते हुए। इसलिए डॉ. अम्बेडकर देश की सामाजिक-आर्थिक समस्याओं का हल राजकीय पूंजीवाद में देख रहे थे। उनके द्वारा प्रस्तावित राजकीय पूंजीवाद में उद्योग क्षेत्र और कृषि क्षेत्र पर राज्य का स्वामित्व होगा तथा कृषि क्षेत्र में खेतीबाड़ी सामूहिक-पद्धति पर आधारित होगी (सामूहिक फार्म द्वारा)। इसका मतलब साफ है कि कृषि के विकास पर ही उद्योगों का विकास जुड़ा हुआ है। इसलिए राज्य की यह जिम्मेदारी है कि कृषि के साथ-साथ उद्योग के लिए आवश्यक पूंजी जुटाए। डॉ. अम्बेडकर अच्छी तरह जानते थे कि कृषि और उद्योग क्षेत्र एक दूसरे के पूरक हैं। एक के बिना दूसरे का विकास संभव नहीं है। अगर राज्य के स्वामित्व में कृषि क्षेत्र और उद्योग क्षेत्र का विकास किया जाता है तो वे देश के सामाजिक-आर्थिक विकास में बेहतर परिणाम दे सकते हैं।

इसी के साथ-साथ डॉ. अम्बेडकर ने देश के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान देने वाले बीमा क्षेत्र के स्पष्टीकरण का भी प्रस्ताव रखा जिससे दो उद्देश्यों (दोहरे उद्देश्यों) को प्राप्त किया जा सकता है। एक, निजी बीमा के मुकाबले राष्ट्रीयकृत बीमा अधिक सुरक्षा देता है, क्योंकि उसके अंतर्गत राज्य के संसाधन बीमा राशि के अंतिम भुगतान की गारंटी के रूप में गिरवी रहते हैं। दूसरे इसके साथ ही राज्य को भी अपनी आर्थिक योजना के वित्तीय व्यवस्था के लिए जरूरी संसाधन मिल जाते हैं। इसलिए बीमा का राष्ट्रीयकरण जरूरी है। उसे निजी हाथों में सौंपने से राज्य को ही नुकसान होता है- वित्तीय संसाधन के रूप में। लेकिन आज का शासक वर्ग, बीमा क्षेत्र को पूरी तरह से निजी हाथों में सौंपने की तैयारी कर रहा है। पर कैसा आर्थिक विकास है? इसका मतलब साफ है कि राज्य अपनी जिम्मेदारी से मुँह मोड़ रहा है।

इससे यह भी साफ हो जाता है कि देश का आर्थिक विकास बड़े-बड़े उद्योगों के राज्य के स्वामित्व और संरक्षण में ही संभव हो सकता है। इसके लिए यह भी जरूरी है कि देश का बहुत तेजी से औद्योगीकरण किया जाए। डॉ. अम्बेडकर मानते थे कि भारत के तीव्र औद्योगीकरण के लिए राज्य-साम्यवाद बहुत जरूरी है। इसका सबसे बड़ा कारण यह था कि निजी क्षेत्र (निजी उद्योग) इस काम को पूरा नहीं कर सकता। अगर वे ऐसा करने में सफल हो भी गए तो सम्पत्ति की असमानताओं (आर्थिक असमानताओं) को जन्म देंगे जैसाकि यूरोप में निजी-पूंजीवाद ने किया था। डॉ. अम्बेडकर ने साफ शब्दों में सत्ता पर काबिज होने वाले शासक वर्ग को चेतावनी देते हुए कहा था कि निजी पूंजीवाद (राजकीय पूंजीवाद) के मार्ग से देश का तीव्र औद्योगीकरण संभव नहीं हो सकता, क्योंकि उभरता हुआ पूंजीपति वर्ग वित्तीय संसाधन जुटाने में पूर्णतया सफल नहीं हो सकता। सार्वजनिक क्षेत्र का तेजी से विकास राज्य के स्वामित्व और संरक्षण में ही संभव हो सकता है। डॉ. अम्बेडकर की स्पष्ट मान्यता थी कि राज्य-पूंजीवाद (निजी पूंजीवाद) का एकमात्र विकल्प राज्य-समाजवाद ही हो सकता है, क्योंकि पूंजीवाद निजी सम्पत्ति को पैदा करके आर्थिक विषमताओं को जन्म देता है। उसका आधार संसाधनों का रोहण करके आर्थिक शोषण करना और अधिक-से-अधिक मुनाफा कमाना रहा है।

जिस वक्त डॉ. अम्बेडकर राज्य-पूंजीवाद का एकमात्र विकल्प राज्य-समानता बता रहे थे उस वक्त यूरोप का पूंजीवाद आर्थिक

संकट के दौर से गुजर रहा था, क्योंकि उसका मुख्य आधार निजी पूंजी है। आज भी पूंजीवादी देश आर्थिक संकट में बुरी तरह फंसे हैं। भारत भी आर्थिक संकट के दौर से गुजर रहा है और आर्थिक संकट से उबरने के लिए वह जनता की गाढ़ी कमाई से खड़े किए गए सार्वजनिक क्षेत्र की महत्वपूर्ण इकाइयों को बेच रहा है जिसे इसने आर्थिक सुधारों का नाम दिया है। दरअसल, पूंजी का यह संकट पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का ही संकट है जो दिनों-दिन और भी गहराता जा रहा है। अगर उस वक्त शासक वर्ग ने डॉ. अम्बेडकर की उस चेतावनी पर ध्यान दिया होता जो उन्होंने यूरोप के पूंजीवाद के आर्थिक संकट को देखते हुए दी तो आज भारत ऐसे भयंकर आर्थिक संकट के दौर से नहीं गुजर रहा होता। तब उसने पूंजीवाद की जगह डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित राज्य-समाजवाद का रास्ता आर्थिक-सामाजिक विकास के लिए अपनाया होता।

यह सही है कि जब पूंजीवाद और पूंजीवादी अर्थव्यवस्था संकटग्रस्त होती है तब उसे राज्य द्वारा वित्तीय सहायता देकर (संरक्षण) बचाने की कोशिश की जाती रही है ताकि कुछ समय के लिए उसे आर्थिक संकट से उबारा जा सके। पूंजीवादी राज्य की यह एक खास विशेषता है। इसलिए ऐसे पूंजीवाद को मैं राज्य-पूंजीवाद या राजकीय पूंजीवाद कहता हूं जिसे राज्य का संरक्षण मिला होता है। अमेरिकी अर्थशास्त्री कीन्स ने पूंजीवाद को 'राज्य की कल्याणकारी' भूमिका से तोड़कर उसके चरित्र को उदारवादी बनाने की कोशिश की थी। दरअसल, राज्य-पूंजीवाद अपने मूल चरित्र में पूंजीवाद ही है जो शोषण और मुनाफे पर ही टिका हुआ है।

अब सवाल यह उठता है कि संयुक्त राज्य भारत के संविधान के लिए प्रस्तावित डॉ. अम्बेडकर के राज्य-समाजवाद का क्या उद्देश्य है और उसे कैसे प्राप्त किया जा सकता है? और राज्य-समाजवाद गांधीवादी, डॉ. लोहिया के तथाकथित समाजवाद और कम्युनिस्टों के समाजवाद से कैसे अलग है? डॉ. अम्बेडकर ने अपने प्रस्तावित (योजना) संविधान सम्बन्धी शासन में राज्य-पूंजीवाद की दो प्रमुख विशेषताओं की ओर स्पष्ट संकेत करते हुए बताया कि यह आर्थिक जीवन के महत्वपूर्ण क्षेत्र में राज्य-समाजवाद की स्थापना प्रस्तावित करती है और दूसरी विशेषता यह है कि राज्य-समाजवाद की स्थापना को विधायिका की मर्जी पर नहीं छोड़ सकती।'' (वही, पृष्ठ-194) इसे संविधान के कानून द्वारा स्थापित किया जा सकता है ताकि इसे विधायिका और कार्यपालिका के किसी कार्य द्वारा बदला नहीं जा सके। अपनी इस धारणा को और स्पष्ट करते हुए डॉ. अम्बेडकर ने बताया कि ''इस योजना में संसदीय लोकतंत्र को खत्म किए बिना राज्य-समाजवाद की स्थापना करने का प्रयास किया गया है और उसे संसदीय लोकतंत्र की इच्छा पर नहीं छोड़ा गया है।

फिर प्रश्न उठता है कि डॉ. अम्बेडकर राज्य-समाजवाद की स्थापना को क्यों संविधान के कानून द्वारा स्थापित करना चाहते थे? क्योंकि उन्हें यह आशंका दिखाई दे रही थी कि संसदीय लोकतंत्र के किसी चुनाव में बहुमत राज्य-समाजवाद के पक्ष में हो सकता है तो अगले चुनाव में बहुमत इसके विरोध में जा सकता है। इसलिए वे लोकतांत्रिक संसदीय प्रणाली में विश्वास रखते हुए राज्य-समाजवाद की स्थापना का स्वामित्व चाहते थे ताकि इसे किसी भी राजनीतिक दल द्वारा अपनी इच्छा से बदला न जा सके। इसी संदर्भ में डॉ. अम्बेडकर ने फिर सवाल उठाया कि राज्य-समाज की स्थापना के लिए तानाशाही-व्यवस्था जरूरी है?

डॉ. अम्बेडकर लोकतंत्र का मूलाधार 'आजादी, बराबरी और भाईचारा' को मानते हैं। इसलिए व्यक्ति की आजादी तानाशाही में नहीं, संसदीय लोकतंत्र में ही संभव है। उसके सामने सबसे बड़ी समस्या यही थी कि राज्य-समाजवाद की स्थापना बिना तानाशाही के कैसे हासिल की जाए? तब ऐसी स्थिति में एक ही रास्ता बचता है कि संसदीय लोकतंत्र को भी बनाए रखा जाए और संवैधानिक कानून द्वारा राज्य-समाजवाद को निर्धारित (स्थापित) किया जाए। ऐसा करने से तीन उद्देश्यों को हासिल किया जा सकता है: एक समाजवाद की स्थापना; दो, संसदीय लोकतंत्र को बनाए रखना और तीन, तानाशाही से जा सकता है। (वही, पृष्ठ-197)

ठीक ही डॉ. अम्बेडकर ने अपने राज्य-समाजवाद को समाजवाद ही कहा है जो संसदीय लोकतंत्र-प्रणाली में संविधान के कानून द्वारा निर्धारित समाजवाद है। डॉ. अम्बेडकर के समाजवाद की संकल्पना (स्थापना) डॉ. लोहिया के समाजवादियों के समाजवाद और कम्युनिस्टों के समाजवाद से एकदम अलग है। डॉ. लोहिया के समाजवाद में गांधाजी जी की आत्मा निवास करती है तो कम्युनिस्टों के समाजवाद में सर्वहारा की तानाशाही। और इस तानाशाही में संसदीय लोकतांत्रिक प्रणाली के लिए कोई जगह नहीं है। लेकिन डॉ. अम्बेडकर के समाजवाद में लोकतंत्र और सामाजिक लोकतंत्र मौजूद हैं जिसके आधार पर वे जातिविहीन, वर्गविहीन लोकतांत्रिक समाजवाद की स्थापना करना चाहते थे। इस तरह डॉ. अम्बेडकर लोकतंत्र पर आधारित समाजवाद के तहत राष्ट्र के नवनिर्माण का सपना देखते थे, जो अभी अधूरा पड़ा है। □

(लेखक दिल्ली विश्वविद्यालय में प्राध्यापक रह चुके हैं, व त्रैमासिक पत्रिका 'अपेक्षा' के सम्पादक हैं।)

राष्ट्र निर्माण में बाबासाहेब का सांस्कृतिक योगदान

▪ आनंद श्रीकृष्ण

बाबासाहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर के कोलंबिया विश्वविद्यालय में प्रवेश का यह 100वां वर्ष है। कोलंबिया विश्वविद्यालय में पढ़ाई के दौरान डॉ. अम्बेडकर ने अर्थशास्त्र, राजनीति शास्त्र के साथ-साथ इतिहास, दर्शन और धर्म ग्रंथों का भी गहनता से अध्ययन किया। डॉ. अम्बेडकर ने अपने विस्तृत शोध द्वारा यह निष्कर्ष निकाला कि भारत वर्ष की गुलामी, गरीबी और दुर्दशा का कारण प्रचलित जाति-व्यवस्था है जिसके कारण हमारे देश की बहुसंख्यक आबादी को समुचित विकास का अवसर नहीं मिल रहा है।

राष्ट्रीय भावना का विकास

डॉ. अम्बेडकर का निष्कर्ष था कि जातिवाद के कारण ही भारत में राष्ट्र भावना नहीं पनप पाई और भारत बार-बार गुलामी का शिकार होता रहा। डॉ. अम्बेडकर ने एक ऐसे भारत का सपना देखा था जो समृद्ध हो, शक्तिशाली हो, विकसित हो और दुनिया में अग्रणी हो। डॉ. अम्बेडकर का मानना था कि जाति-व्यवस्था को तोड़े बिना भारत को समृद्ध और शक्तिशाली नहीं बनाया जा सकता, इसलिए जाति-व्यवस्था को बनाए रखने का अर्थ है कि भारत के समृद्ध और विकसित होने में बाधा खड़ी करना।

डॉ. अम्बेडकर मानते थे कि हमें एक ऐसी संस्कृति का विकास करना चाहिए जिसमें प्रत्येक देशवासी को एक सम्मानित नागरिक माना जाए और प्रत्येक नागरिक की मानवीय गरिमा और आत्मसम्मान के साथ जीने का अवसर सुनिश्चित हो तथा देश में परस्पर भाईचारे के साथ प्रेम और सौहार्द की भावना हो। डॉ. अम्बेडकर का कहना था कि राष्ट्रवाद तभी औचित्य ग्रहण कर सकता है जब लोगों के बीच जाति, नस्ल या रंग का अंतर भुलाकर उनमें सामाजिक-भ्रातृत्व को सर्वोच स्थान दिया जाए। राष्ट्र के संदर्भ में राष्ट्रीयता का अर्थ सामाजिक एकता में दृढ़ भावना। अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ में इसका आधार भाईचारा होना चाहिए। डॉ. अम्बेडकर कहते थे : 'निजी तौर पर मैं खुल्लमखुल्ला कहना चाहता हूं कि मैं नहीं मानता कि इस देश में किसी विशेष संस्कृति के लिए कोई जगह है। चाहे वह हिन्दू संस्कृति हो, या मुस्लिम संस्कृति, या कन्नड़ संस्कृति या गुजराती संस्कृति। ये ऐसी चीजें हैं जिन्हें हम नकार नहीं सकते, पर उनको वरदान नहीं मानना चाहिए, बल्कि अभिशाप की तरह मानना चाहिए, जो हमारी निष्ठा को डिगाती हैं और हमें अपने लक्ष्य से दूर ले जाती हैं। यह लक्ष्य है, एक ऐसी भावना को विकसित करना कि हम सब भारतीय हैं।'

लेकिन इस भावना के विकास में जाति सबसे बड़ी बाधा है। डॉ. अम्बेडकर का निष्कर्ष था कि जाति की प्रकृति ही विखण्डन और विभाजन करना है। जाति का यह अभिशाप है। डॉ. अम्बेडकर का कहना था कि जाति भावनाओं से आर्थिक विकास रुकता है। इससे वे स्थितियां पैदा हो जाती हैं जो कृषि तथा अन्य क्षेत्रों में सामूहिक प्रयत्नों के विरुद्ध हैं। जात-पांत के रहते ग्रामीण विकास समाजवादी सिद्धांतों के विरुद्ध रहेगा। इसलिए जातिवाद के कारण जो बड़े-बड़े गढ़ बन गए हैं, उन्हें तोड़ा जाए, जिससे शहरों और गांवों में तेजी से विकास हो। इसलिए डॉ. अम्बेडकर का लगातार यह प्रयत्न रहता था कि भारत में एक ऐसी साझी संस्कृति का निर्माण हो जिसमें जात-पांत के आधार पर लोगों के साथ अन्याय और शोषण न हो और हर नागरिक अपनी क्षमताओं के अनुसार राष्ट्र निर्माण में योगदान दे सके। इसी चिंता और सपने को ध्यान में रखकर डॉ. अम्बेडकर ने संविधान सभा में अपने भाषण में कहा था कि हमें अपने देश की आजादी को बचाने के लिए हर-संभव कोशिश करनी चाहिए और अपने देश की स्वतंत्रता की रक्षा अपने खून की आखिरी बूंद से करने के लिए तैयार रहना चाहिए।

महिला सशक्तिकरण

डॉ. अम्बेडकर का मानना था कि किसी भी देश की आबादी का आधा हिस्सा महिलाओं का होता है और इसलिए कोई भी देश तभी तरक्की कर सकता है जब उसकी महिलाओं को तरक्की का समान अवसर मिले। ऐसा नहीं है कि भारत में महिलाओं की हमेशा ही दुर्दशा रही हो। एक समय था जब कहा जाता था कि जहां पर नारी की पूजा की जाती है वहां देवता निवास करते हैं (यत्र नारियस्ति पूज्यते, तत्र रमन्ते देवता) । प्राचीन भारत में गौतम बुद्ध ने महिलाओं को दीक्षा का अधिकार देकर और स्वतंत्र भिक्षुणी संघ की स्थापना करके महिला सशक्तीकरण में ऐतिहासिक योगदान किया था। लेकिन बुद्ध के कुछ शताब्दियों बाद मनुस्मृति जैसे विधान बनाए गए जिसमें स्त्रियों से बराबरी का अधिकार छीन लिया गया और उनके लिए एक ऐसे कानून की व्यवस्था की गई जिससे महिलाएं जीवन के किसी क्षेत्र में पुरुषों की बराबरी न कर

सकें। मनुस्मृति के श्लोक 5 .147 में प्रावधान किया गया : लड़की को, नवयुवती को या वृक्ष को भी अपने घर में भी कोई काम स्वतंत्रतापूर्वक नहीं करना चाहिए।

इसी तरह श्लोक 5 .148 में प्रावधान किया गया : स्त्री को बचपन में अपने पिता, युवावस्था में अपने पति और जब उसका पति दिवंगत हो जाए तब अपने पुत्रों के अधीन रहना चाहिए। स्त्री को कभी भी स्वतंत्र नहीं रहना चाहिए।

श्लोक 9 .2 में प्रावधान है कि स्त्रियां उनके परिवारों के पुरुषों द्वारा दिन-रात अधीन रखी जानी चाहिए और यदि वे अपने को विषयों में आसक्त करें तो उन्हें अपने नियंत्रण में अवश्य रखें।

इतना ही नहीं, श्लोक 9 .46 में प्रावधान किया गया कि बेचने और त्याग देने पर भी कोई स्त्री अपने पति से मुक्त नहीं होती। पति का अधिकार उस पर सदैव रहेगा।

ऐसे प्रावधानों का महिलाओं के सामाजिक और आर्थिक जीवन पर बहुत नुकसानदायक प्रभाव पड़ा जिसके कारण महिलाओं के लिए शिक्षा के द्वार कठिन हो गए और विधवाओं को विधवा आश्रम जाने के लिए मजबूर होना पड़ा। अधिकतर महिलाओं ने भी अपनी दुर्दशा को भाग्य का खेल समझकर स्वीकार कर लिया था। डॉ. अम्बेडकर महिलाओं की इस स्थिति से बहुत दु:खी थे और हमेशा इस कोशिश में थे कि महिलाओं की स्थिति में कैसे सुधार लाया जाए और उनको वे सभी अधिकार दिलाए जाएं जो किसी भी समाज में आम नागरिक को प्राप्त होने चाहिए। 4 अगस्त, 1913 को श्री शिवनाक गोनाक जमेदार (पोईपकर) को न्यूयार्क (अमेरिका) से लिखे अपने एक पत्र में डॉ. अम्बेडकर ने अंग्रेजी के महाकवि शेक्सपीयर की यह पंक्तियां उद्धत की थीं :

'' मानव-जीवन में एक ऐसी तरंग भी आती है, जो तूफान में से बचा कर सफलता तक ले जाती है।''

इसी पत्र में डॉ. अम्बेडकर ने इस सिद्धांत की भी आलोचना की है कि मनुष्य को इस संसार में जन्म के आधार पर या पूर्व कर्मों के अनुसार सब कुछ प्राप्त होता है। डॉ. अम्बेडकर ने इसी पत्र में लिखा : ''हमें कर्म सिद्धांत को त्याग देना चाहिए। यह गलत है कि माता-पिता बच्चे को केवल जन्म ही देते हैं, भविष्य नहीं। माता-पिता अपने बच्चों का भविष्य उज्ज्वल बना सकते हैं यदि हम इस सिद्धांत पर चलने लग पड़ें तो हम अति शीघ्र शुभ दिन देख सकते हैं और यदि हम लड़कों के साथ-साथ लड़कियों की शिक्षा की ओर भी ध्यान देने लग जाएं तो हम शीघ्र प्रगति कर सकते हैं। आप अपनी पुत्री को शिक्षा देकर इसका लाभदायक परिणाम स्वयं देख सकते हैं। इसलिए आपका मिशन, जो भी आपके अड़ोस-पड़ोस में है, उन्हें यह समझाना चाहिए कि पढ़ो और विद्वान बनो।''

आगे चलकर डॉ.अम्बेडकर ने मनुस्मृति को सार्वजनिक रूप से दहन किया, क्योंकि डॉ. अम्बेडकर का विश्वास था कि मनुस्मृति के प्रावधानों के चलते भारत में राष्ट्रीय एकता की भावना नहीं मजबूत हो सकती, समाज में ऊंच-नीच का भेदभाव नहीं मिट सकता और महिलाओं को उनका उचित स्थान नहीं मिल सकता।

सन् 1942 में बाबासाहेब को गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी में श्रम सदस्य के रूप में नियुक्त किया गया। डॉ. अम्बेडकर ने महिलाओं के लिए भारत के इतिहास में पहली बार प्रसूति अवकाश की व्यवस्था की। आगे चलकर जब डॉ. अम्बेडकर को संविधान प्रारूप समिति का अध्यक्ष चुना गया तो डॉ. अम्बेडकर ने संविधान के अनुच्छेद 14, 15 और 16 में ऐसा प्रावधान रखा कि लिंग के आधार पर महिलाओं के साथ भेदभाव नहीं किया जाएगा और समानता का अधिकार मौलिक अधिकार बनाया गया। इतना ही नहीं, कानून मंत्री के रूप में डॉ. अम्बेडकर ने हिन्दू कोड बिल संसद में पेश किया जिसका उद्देश्य था कि अलग-अलग पंथों में बंटे हिन्दू समुदाय के लिए एक समान आचार संहिता तैयार करना जिसमें महिलाओं को वैवाहिक मामलों में, पति से तलाक के मामले में, उत्तराधिकार के मामले में, गोद लेने के मामले में, गुजारा भत्ता के मामले में और परिवार में हिस्सेदारी के मामले में समान अधिकार मिले।

महिला सशक्तिकरण के लिए हिन्दू कोड बिल

बाबासाहेब प्राय: कहा करते थे कि शास्त्रों में निहित आदेशों के अनुसार शूद्रों और अछूतों के साथ-साथ सारी स्त्री जाति पर चाहे वह किसी भी वर्ण की है, बहुत जुल्म ढ़ाया गया है। डॉ .अम्बेडकर कहते थे कि ''मैं हिन्दू कोड बिल पास कराकर भारत की समस्त नारी जाति का कल्याण करना चाहता हूं। मैंने हिन्दू कोड बिल पर विचार होने वाले दिनों में अनेक सवर्ण जाति से सम्बन्ध रखने वाली और पतियों द्वारा परित्यक्ता अनेक युवतियों और प्रौढ़ महिलाओं को देखा जिन्हें पतियों ने त्यागकर उनके जीवन-निर्वाह के लिए नाममात्र का चार-पांच रुपया मासिक गुजारा बांधा हुआ था, और वह ऐसी दयनीय दशा के दिन अपने माता-पिता, या भाई-बन्धुओं के साथ न केवल स्वयं रो-रोकर व्यतीत कर रही थीं बल्कि अपने अभिभावकों के हृदय भी अपनी ऐसी दुर्भाग्या बहनों तथा पुत्रियों को देख-देखकर शोकसन्तप्त रहते थे।'' बाबासाहेब का करुणामय हृदय ऐसी देवियों की करुण गाथा सुनकर पिघल जाता था।

हिन्दू कोड बिल के पास हो जाने पर ऐसी दु:खित और निरीह देवियां कानून के बलबूते पर ऐसे अत्याचारी पतियों से पिण्ड छुड़ा कर तलाक हासिल कर सकती थीं और जीवन-यापन के लिए किसी दूसरे व्यक्ति से विवाह भी कर सकती थीं। बख्शी टेकचन्द जी जैसे कट्टर आर्यसमाजी व्यक्ति ने भी अपनी वकालत के दौरान सवर्ण हिन्दुओं की ऐसी विवाहिता और पतियों द्वारा परित्यक्ता महिलाओं की दुर्दशा

स्वयं अनुभव कर चुके थे। इसीलिए आर्यसमाजी नेताओं के साथ सहमत न होकर भी विवाह-विच्छेद (तलाक) और एक काल में एक पत्नी के साथ विवाह वैध बनाने में बाबासाहेब के साथ बिल्कुल सहमत थे।

'हिन्दू कोड बिल' की एक प्रबल विशेषता यह भी थी कि किन्हीं भी दो हिन्दू वर-वधुओं का विवाह चाहे उनका परस्पर वर्ण भेद या जाति भेद कैसा व कितना भी क्यों न हो, वैध माना जाता है और उनसे उत्पन्न संतान पैतृक सम्पत्ति में वैध अधिकारी बन जाती है जबकि इस कानून से पहले समय में शताब्दियों से प्रचलित परस्पर विरोधी वर्णों, जातियों उप-जातियों में हुए विवाह में से उत्पन्न सन्तान पैतृक सम्पत्ति में अंश या हिस्सा प्राप्त करने के लिए वैध या जायज संतान नहीं मानी जाती थी। शताब्दियों से धर्म-ग्रन्थों में निहित आदेशों के अनुसार तथा हिन्दुओं में प्रचलित रूढ़ियों के अनुसार दत्तक या गोद लेने की प्रथा केवल सजातीय या दोहता को ही सुविधा देती थी किन्तु हिन्दू कोड न केवल किसी भी हिन्दू बालक को दत्तक या गोद लेने का अधिकार दिलवाता था बल्कि किसी कन्या को भी गोद लिया जा सकता है और वह गोद लेने वाले माता-पिता की सम्पत्ति में अधिकार प्राप्त करती है।

रूढ़िवादी लोगों के विरोध के कारण हिन्दू कोड बिल उस समय नहीं पास हो सका और डॉ.अम्बेडकर ने कानून मंत्री के पद से इस्तीफा दे दिया। लेकिन सामाजिक मंचों से और अपनी लेखनी के माध्यम से वे हिन्दू कोड बिल को पारित कराने के लिए संघर्ष करते रहे। बाद में सन् 1955-56 में हिन्दू कोड बिल को कई टुकड़ों में जैसे हिन्दू विवाह कानून, हिन्दू उत्तराधिकार कानून, हिन्दू गोद एवं गुजारा भत्ता कानून जैसे नामों से पास किया गया। लेकिन डॉ. अम्बेडकर का सपना पूरी तरह तब साकार हुआ जब सन् 2005 में हिन्दू उत्तराधिकार कानून में संशोधन करके पुत्री को भी पुत्र के समान पैतृक संपत्ति में बराबर का अधिकार दिया गया। इस प्रकार डॉ. अम्बेडकर द्वारा किया गया संघर्ष अपनी सफलता की चरम सीमा पर सन् 2005 में पहुंचा।

डॉ. अम्बेडकर का सपना था कि महिलाओं को पुरुषों के समान सभी अधिकार दिलाए जाएं। डॉ. अम्बेडकर अपने मिशन में काफी हद तक सफल रहे क्योंकि तब से अब तक महिलाओं के प्रति सामाजिक नजरिए में बहुत बदलाव आ चुका है। महिलाएं जीवन के हर क्षेत्र जैसे पुलिस, अर्धसैनिक बल, पायलट, उद्योगपति, शिक्षाविद्, वकील, वैज्ञानिक, डॉक्टर, इंजीनियर, खेल-कूद, पर्वतारोहण से लगाकर संगीत, फिल्म जगत, चित्रकला इत्यादि क्षेत्रों में अपनी योग्यता से भारत का नाम रोशन कर चुकी हैं। भारत के प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति, लोकसभा के स्पीकर सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश के पद को महिलाओं ने सुशोभित कर भारत को एक मजबूत राष्ट्र बनाने में अपना योगदान दिया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि बाबासाहेब की सोच अपने समय से बहुत आगे की थी और इसीलिए वे युग-पुरुष कहे जाते हैं।

संविधानवाद की भावना का महत्त्व

डॉ.अम्बेडकर ने संविधान सभा को संबोधित करते हुए अपने भाषण में कहा था कि भारत को एक मजबूत राष्ट्र बनाने के लिए यह आवश्यक है कि हम संविधानवाद की भावना विकसित करें और संविधानेतर तरीकों को जल्दी से जल्दी तिलांजलि दे दें। उन्होंने कहा था कि जब तक संविधान अस्तित्व में नहीं था तब तक असहयोग आंदोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन, आमरण अनशन, जैसे तरीकों का औचित्य था। लेकिन संविधान लागू होने के बाद इन तरीकों का कोई औचित्य नहीं रह जाता और उन तरीकों से विरोध करने का मतलब है कि संविधान की भावना के विरुद्ध आचरण करना क्योंकि संविधानेत्तर तरीके अराजकता का व्याकरण है। डॉ. अम्बेडकर ने संविधन सभा में यह भी कहा था कि 26 जनवरी, 1950 को हम विरोधाभास की स्थिति में प्रवेश करने जा रहे हैं। राजनैतिक क्षेत्र में तो एक व्यक्ति एक वोट का सिद्धांत होगा और समानता होगी, लेकिन सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में असमानता होगी। इसलिए जितनी जल्दी हो सके हमें सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में भी समानता लानी चाहिए, तभी भारत की एकता और अखंडता मजबूत होगी।

हृदय परिवर्तन की आवश्यकता

डॉ. अम्बेडकर के राजनैतिक प्रयासों ने जाति-व्यवस्था के भयानक अन्याय को काफी हद तक कम किया, मगर इससे वे संतुष्ट नहीं थे। उन्होंने पाया कि संविधान का भारतीय लोगों पर बहुत ही कम प्रभाव है। लोग अभी भी उन्हीं परिस्थितियों में रह रहे हैं जहां अन्याय और शोषण अभी भी अस्तित्व में हैं। गणतांत्रिक संविधान के बावजूद, भारतीयों के जीवन पर जाति की काली छाया अभी भी जारी है। सिर्फ कानून बना देने से स्वतंत्रता, समानता और बंधुता सुनिश्चित नहीं हो सकती। सरकार और कानून में परिवर्तन कर देना ही पर्याप्त नहीं है, हृदय परिवर्तन की आवश्यकता है। बाबासाहेब इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि भारत में लोकतंत्र तभी फल-फूल सकता है जब भारतीय नागरिक लोकतांत्रिक मानसिकता विकसित करें-ऐसी मानसिकता जो स्वतंत्रता, समानता और बंधुता के दृष्टिकोण से सोचती हो, 'कोई स्वतंत्रता नहीं हो सकती,' उन्होंने घोषणा की, 'यदि स्वतंत्रता प्रयोग करने के लिए मन प्रशिक्षित नहीं हैं,' जाति, मिसाल के तौर पर, सामाजिक व्यवहार को संचालित करने वाले विधान से परे अधिक कुछ और है यह 'एक ग्रंथि है, मानसिक अवस्था है,' परिणामस्वरूप, जाति व्यवस्था के उन्मूलन के लिए सभी भारतीय पुरुषों, स्त्रियों की सोच में क्रांतिकारी बदलाव की आवश्यकता है। हृदय का यह मौलिक परिवर्तन कैसे किया जा सकता है?

बाबासाहेब का मानना था कि ये परिवर्तन सांस्कृतिक विकास से संभव है। सांस्कृतिक विकास के लिए आवश्यक है कि लोग ऐसे धर्म को अपनाएं जिसमें असमानता और ऊंच-नीच का कोई स्थान न हो और जिससे लोगों में समानता, भाईचारा, स्वतंत्रता और करुणा की भावना का विकास हो।

सांस्कृतिक विकास में धर्म की भूमिका

सांस्कृतिक विकास में धर्म की बहुत बड़ी भूमिका होती है। डॉ. अम्बेडकर ने पूरा प्रयास किया कि हिन्दू धर्म में सुधार हो और दलितों तथा महिलाओं को उनके मानवाधिकार प्राप्त हों तथा उन्हें मानवीय गरिमा और आत्मसम्मान के साथ जीने के अवसर प्राप्त हो। महिलाएं और दलित भारत की कुल आबादी का 65 प्रतिशत हिस्सा हैं। जब तक दलित और महिलाएं विकसित और मजबूत नहीं होते, भारत कैसे मजबूत और विकसित हो सकता है? इसीलिए डॉ. अम्बेडकर ने महाड सत्याग्रह करके चावदार तालाब से पानी पीने के अधिकार का आंदोलन और कालाराम मन्दिर में प्रवेश का आंदोलन शुरू करके दलितों के मन्दिर प्रवेश के अधिकार का आंदोलन आरंभ किया। डॉ. अम्बेडकर कहते थे कि उनकी रुचि इस बात में नहीं है कि लोग मन्दिर जाकर पूजा करें बल्कि इस बात में है कि इंसान को इंसान समझा जाए और मन्दिर में प्रवेश के अधिकार को एक मानव अधिकार माना जाए जिससे लोगों के बीच ऊंच-नीच और असमानता की भावना समाप्त हो और भाईचारे, समानता और राष्ट्रीय भावना का विकास हो जिससे राष्ट्र की एकता और अखंडता मजबूत हो।

डॉ.अम्बेडकर चाहते थे कि हिन्दुओं में आपस में रोटी-बेटी का संबंध को जिससे कि राष्ट्रीय एकता के विकास में सहायता मिले। लेकिन डॉ. अम्बेडकर की अनगिनत कोशिशों के बावजूद जब समाज में यथोचित परिवर्तन नहीं हुए तो डॉ. अम्बेडकर ने 1935 में येवला (नाशिक) में डॉ. अम्बेडकर ने घोषणा की कि वह हिन्दू धर्म में पैदा हुए थे यह उनके वश की बात नहीं थी लेकिन हिन्दू रहकर वह मरेंगे नहीं, यह उनके वश में है। इस घोषणा के बाद हिन्दू समाज के वरिष्ठ नेताओं ने डॉ. अम्बेडकर से अनुरोध किया कि वे हिन्दू धर्म का परित्याग न करें। उनका मानना था कि यदि बाबासाहेब अपने लोगों के साथ कोई ऐसा धर्म अपना लेंगे जो बाहर से आया हो तो हिन्दुओं के लिए खतरनाक साबित होगा। इसलिए उन्होंने मसुरकर महाराज को बाबासाहेब से बात करने और उन्हें धर्म -परिवर्तन से रोकने के लिए मनाने की जिम्मेदारी सौंपी। इस बैठक में बाबासाहेब ने दो मुख्य शर्तें रखीं। पहली, हिन्दुओं की सभी जातियों व वर्गों के लोगों में आपस में खान-पान और शादियां हों और दूसरा, श्री के के साकत (जिनकी प्रशंसा में 'केसरी' ने लिखा था कि वो हिन्दू शास्त्रों के ज्ञाता और काफी धार्मिक व्यक्ति हैं) को एक वर्ष के लिए शंकराचार्य नियुक्त किया जाए। इन दोनों प्रस्तावों के ऊपर मसुरकर महाराज ने हिन्दू नेताओं के साथ विचार-विमर्श किया। सब पहलुओं पर मंथन के बाद बाबासाहेब को संदेश मिला कि उनके प्रस्ताव को ठुकरा दिया गया है। प्रस्ताव तो ठुकरा दिया गया, लेकिन डॉ. अम्बेडकर के प्रयासों का यह परिणाम अवश्य हुआ कि जातिप्रथा के विरुद्ध लोगों में जागृति आई और काफी लोगों ने जातिवाद को समाप्त करने के लिए काम किया। डॉ. अम्बेडकर के संघर्षों का ही परिणाम है कि कालाराम मन्दिर के वर्तमान पुजारी ने कुछ वर्ष पहले एक राष्ट्रीय दैनिक को दिए एक साक्षात्कार में यह स्वीकार किया कि उनके पिता ने, जो उस समय कालाराम मन्दिर के पुजारी थे, दलितों के मन्दिर प्रवेश के अधिकार को न मानकर एक बहुत बड़ी गलती की थी और जिसका नुकसान पूरे समाज को उठाना पड़ा। आज कई राज्यों में दलितों को वैदिक कर्मकाण्ड का प्रशिक्षण दिया जा रहा है और उनको मन्दिरों में पुजारी नियुक्त किया जा रहा है। इलाहाबाद में अभी हाल में समाप्त हुए कुंभ मेले में सफाई कामगार महिलाओं को ब्राह्मणों और साधु-संतों के साथ भोजन करवाकर समाज में एक संदेश देने की कोशिश की गई कि यदि धार्मिक नेता ईमानदारी से प्रयास करें तो हिन्दुओं के सभी वर्गों और जातियों में आपसी खान-पान का संबंध बनाना कोई मुश्किल काम नहीं है। डॉ. अम्बेडकर यही तो चाहते थे कि समाज के सभी वर्गों में खान-पान का संबंध विकसित हो। इसी तरह महिलाओं को तलाक का अधिकार मिला है और विधवाओं को सार्वजनिक रूप से होली खेलने के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है। डॉ. अम्बेडकर यही तो चाहते थे कि महिलाओं को पुरुषों के समान समझा जाए और यदि विधुर पुरुष को सारे अधिकार प्राप्त हैं तो विधवा महिला को क्यों नहीं मिलनी चाहिए? इस प्रकार हम देखते हैं कि भले ही ऐसी सोच विकसित करने में आधी शताब्दी से अधिक समय लग गया परंतु बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर के प्रयासों को अंततः सफलता मिली है और भारत के सांस्कृतिक निर्माण में उनके योगदान को उनके विरोधियों ने भी स्वीकारा है।

धर्म और नैतिकता का महत्व

डॉ. अम्बेडकर का मानना था कि धर्म किसी भी राष्ट्र के सांस्कृतिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। डॉ. अम्बेडकर का मानना था कि एक स्वतंत्र और न्यायप्रिय समाज नागरिकों के नैतिक आचरण पर निर्भर है। लेकिन नागरिकों का नैतिक आचरण इस बात पर निर्भर करता है कि उनका जीवन के अर्थ और उसके उद्देश्य के प्रति क्या दृष्टिकोण है? स्वतंत्रता, समानता और बंधुता जो हमारे संविधान की भूमिका में आदर्श तत्व के रूप में ही स्थापित किए गए हैं, वो अंततः धर्म पर निर्भर हैं। इसलिए डॉ. अम्बेडकर एक ऐसे धर्म की तलाश में थे जिसमें सब को विकास का समान अवसर मिले, जो लोगों में स्वतंत्रता, समानता, न्याय, सौहार्द और भाईचारे की भावना का विकास कर सके। डॉ. अम्बेडकर का मानना था कि यह सारे तत्व भगवान बुद्ध की शिक्षाओं में विद्यमान हैं।

डॉ. अम्बेडकर का तथागत बुद्ध की शिक्षाओं से परिचय सन् 1907 में ही हो गया था जब उनके शिक्षक श्री केलुस्कर ने स्वलिखित पुस्तक 'गौतम बुद्ध की जीवनी' भेंट की थी। लेकिन बौद्ध धर्म का गहन अध्ययन बाबासाहेब ने कोलंबिया जाने के बाद ही किया। सन् 1950 में महाबोधि सोसायटी द्वारा प्रकाशित 'महाबोधि' पत्रिका में प्रकाशित एक लेख में डॉ. अम्बेडकर ने लिखा था कि एक अच्छे धर्म में स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व का समावेश होना चाहिए। प्रचलित धर्मों में से किसी में उपरोक्त तीन गुणों में से एक गुण या दो गुण ही मिलते हैं। केवल बौद्ध धर्म में उपरोक्त तीनों गुणों का समावेश है। तथागत गौतम बुद्ध ने अपनी शिक्षाओं द्वारा अहिंसा के साथ-साथ सामाजिक स्वतंत्रता, बौद्धिक स्वतंत्रता, आर्थिक स्वतंत्रता और राजनीतिक स्वतंत्रता का भी आंदोलन चलाया था। बुद्ध ने महिलाओं को पुरुषों के बराबर अधिकार देकर महिला सशक्तिकरण के आंदोलन की नींव रखी थी।

डॉ. अम्बेडकर के मतानुसार किसी भी अन्य धर्म संस्थापक ने बुद्ध की तुलना में जीवन के सभी पहलुओं पर इतने विस्तार से उपदेश नहीं दिए और न ही महिला और पुरुष की समानता के लिए इतना बड़ा आंदोलन चलाया। डॉ. अम्बेडकर के अनुसार तथागत बुद्ध की शिक्षाएं आधुनिक हैं, उपयोगी हैं और वैज्ञानिक कसौटी पर कसी जा सकती हैं। बुद्ध की शिक्षाओं में अंधविश्वास और रूढ़िवादिता के लिए कोई स्थान नहीं है। बुद्ध धर्म की दर्शन के क्षेत्र में यह उल्लेखनीय देन है कि उसने भारत के, न केवल भारत के बल्कि संसार के इतिहास में पहली बार यह उद्घोषणा की कि दर्शन का उद्देश्य हवाई बातें करना नहीं बल्कि समाज का, संसार का, नवनिर्माण करना है। इसलिए डॉ. अम्बेडकर ने निष्कर्ष निकाला कि हमारे संविधान में निहित उद्देश्यों की पूर्ति में भगवान बुद्ध की शिक्षाएं बहुत उपयोगी सिद्ध होंगी क्योंकि बुद्ध की शिक्षाओं को जीवन में उतारने से लोगों के बीच स्वतंत्रता, समानता, न्याय, बंधुत्व भाव, प्रेम और सौहार्द की भावना का विकास होगा। डॉ. अम्बेडकर ने बुद्ध के सिद्धांतों की व्याख्या इस प्रकार की है : ''मैंने त्रिपिटक का अध्ययन किया। उस अध्ययन से मैंने जो समझा, मैं आगे उसका उल्लेख कर रहा हूं :

1. मुक्त समाज के लिए धर्म आवश्यक है।
2. प्रत्येक धर्म अंगीकार करने योग्य नहीं होता।
3. धर्म का संबंध जीवन के तथ्यों व वास्तविकताओं से होना चाहिए, ईश्वर या परमात्मा या स्वर्ग या पृथ्वी के संबंध में सिद्धांतों तथा अनुमान मात्र निराधार कल्पना से नहीं होना चाहिए।
4. ईश्वर को धर्म का केन्द्र बनाना अनुचित है।
5. आत्मा की मुक्ति या मोक्ष को धर्म का केन्द्र बनाना अनुचित है।
6. पशु-बलि को धर्म का केन्द्र बनाना अनुचित है।
7. वास्तविकता धर्म का वास मनुष्य के हृदय में होता है, शास्त्रों में नहीं।
8. धर्म के केन्द्र, मनुष्य तथा नैतिकता होने चाहिए। यदि नहीं, तो धर्म एक क्रूर अंधविश्वास है।
9. नैतिकता के लिए जीवन का आदर्श होना ही पर्याप्त नहीं है। चूंकि ईश्वर नहीं है, अतः इसे जीवन का नियम या कानून होना चाहिए।
10. धर्म का कार्य विश्व का पुनः निर्माण करना तथा उसे प्रसन्न रखना है, उसकी उत्पत्ति या उसके अंत की व्याख्या करना नहीं।
11. संसार में दुःख स्वार्थों के टकराव के कारण होता है और इसके समाधन का एकमात्र तरीका अष्टांग मार्ग का अनुसरण करना है।
12. संपत्ति के निजी स्वामित्व से अधिकार व शक्ति एक वर्ग के हाथ में आ जाती है और दूसरे वर्ग को दुःख मिलता है।
13. समाज के हित के लिए यह आवश्यक है कि इस दुःख का निदान इसके कारण का विरोध करके किया जाए।
14. सभी मानव प्राणी समान हैं।
15. मनुष्य का मापदंड उसका गुण होता है, जन्म नहीं।
16. जो चीज़ महत्वपूर्ण है वह है उच्च आदर्श, न कि उच्च कुल में जन्म।
17. सबके प्रति मैत्री का साहचर्य व भाईचारे का कभी भी परित्याग नहीं करना चाहिए।
18. प्रत्येक व्यक्ति को विद्या प्राप्त करने का अधिकार है। मनुष्य को जीवित रहने के लिए ज्ञान-विद्या की उतनी ही आवश्यकता है, जितनी भोजन की।
19. अच्छा आचरण-विहीन ज्ञान खतरनाक होता है।
20. कोई भी चीज भ्रमातीत व अचूक नहीं होती। कोई भी चीज सर्वदा बाध्यकारी नहीं होती। प्रत्येक वस्तु छानबीन तथा परीक्षा के अधीन होती है।
21. कोई वस्तु सुनिश्चित तथा अंतिम नहीं होती।
22. प्रत्येक वस्तु कारण-कार्य संबंध के नियम के अधीन होती है।
23. कोई भी वस्तु स्थाई या सनातन नहीं है। प्रत्येक वस्तु परिवर्तनशील होती है। सदैव वस्तुओं में होने का क्रम चलता रहता है।
24. युद्ध यदि सत्य तथा न्याय के लिए न हो, तो वह अनुचित है।
25. पराजित के प्रति विजेता के कर्त्तव्य होते हैं।''

बुद्ध का संक्षिप्त रूप में यही सिद्धांत है। यह कितना प्राचीन, परन्तु कितना नवीन है, उनके उपदेश कितने व्यापक तथा कितने गंभीर हैं। डॉ. अम्बेडकर के अनुसार, आधुनिक युग में बुद्ध की शिक्षाएं अत्यंत

प्रासंगिक और उपयोगी हैं क्योंकि उनमें रूढ़िवाद और अंधविश्वास के लिए कोई जगह नहीं है तथा उन्हें तर्क और विज्ञान की कसौटी पर परखा जा सकता है।

इन सिद्धांतों को ध्यान में रखकर डॉ. अम्बेडकर ने अपने पांच लाख अनुयायियों के साथ 14 अक्टूबर, 1956 में धर्म दीक्षा ली। धर्मदीक्षा के अवसर पर डॉ. अम्बेडकर ने जो परंपरागत दीक्षा विधि थी उसमें 22 नई प्रतिज्ञाओं का समावेश किया जो प्रत्येक नवदीक्षित व्यक्ति को लेनी चाहिए। डॉ. अम्बेडकर अपने ग्रंथ 'भगवान बुद्ध और उनका धर्म, में लिखते हैं कि पारंपरिक रूप से किसी व्यक्ति का बौद्ध धर्म में धर्मांतरण तभी पूर्ण माना जाता है जब वह किसी भिक्षु से त्रिशरण अर्थात् बुद्ध, धर्म व संघ की शरण में जाने और पंचशील के अपनाने का संकल्प लेता है। डॉ. अम्बेडकर इस रूप में धर्मांतरण अनुष्ठान को अपूर्ण मानते थे। डॉ. अम्बेडकर के अनुसार पृथक धर्म दीक्षा के बिना धर्मांतरण को मुकम्मल मानना एक बड़ी त्रुटि थी। उन्होंने कहा है, ''संघ-दीक्षा थी, जिसका मतलब था किसी की भी भिक्षु-संघ में दीक्षा। संघ-दीक्षा से आदमी 'संघ' तथा 'धर्म' दोनों में दीक्षित हो जाता था। लेकिन ऐसे लोगों के लिए जो प्रव्रजित बन 'संघ' की दीक्षा तो न चाहते थे, केवल 'धर्म' की दीक्षा चाहते थे, कोई पृथक 'धर्म-दीक्षा' न थी। यह एक बड़ी गंभीर कमी रह गई। यह कमी उन कारणों में से एक थी जो अन्त में जाकर भारत से बौद्ध-धर्म के लुप्त हो जाने का कारण बनी, इसी पृथक धर्म-दीक्षा के न होने के कारण गृहस्थ एक धर्म से दूसरे धर्म में भटक सकते थे और उससे भी बुरी बात यह है कि बौद्ध धर्म को अपनाए रहते समय ही कोई दूसरा धर्म भी अपनाए रह सकते थे।''

इस दुर्बलता को दूर करने एवं यह सुनिश्चित करने के लिए कि नव बौद्ध अपने विगत धर्म विश्वास से पूरी तरह मुक्त हो कर एक अच्छा बौद्ध बन सकें, बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर ने धर्मांतरण के अंग के रूप में 22 प्रतिज्ञाओं का सूत्र रचा। इस नई दीक्षा पद्धति (संस्कार पद्धति) की आवश्यकता पर बल देते हुए बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर लिखते हैं, ''धम्म-दीक्षा समारोह के लिए हमने एक संस्कार पद्धति बनाई है। बौद्ध ध र्म की दीक्षा लेते समय हर एक को वे संस्कार करने पड़ेंगे। डॉ. अम्बेडकर का दृढ़ मत था कि सर्वसाधारण अज्ञानी मनुष्य का धर्मांतरण बिल्कुल धर्मांतरण नहीं है। वह केवल नाम मात्र की घटना होती है। भारत से बौद्ध धर्म के गायब होने का कारण यह है कि अज्ञ लोगों ने अपने हृदय के अनिश्चित रुख के कारण बुद्ध की पूजा के साथ बौद्ध धर्म में अपने पूर्व जीवन में जो व्यक्ति ब्राह्मण थे, उनके द्वारा घुसेड़े गए अन्य देवी-देवताओं की पूजा भी प्रस्तुत की।

डॉ. अम्बेडकर ने दीक्षा विधि में 22 प्रतिज्ञाओं का नया आयाम जोड़कर सांस्कृतिक विकास में ऐतिहासिक योगदान दिया। डॉ. अम्बेडकर के प्रयासों से सारनाथ से प्राप्त चार शेरों वाले अशोक स्तंभ को भारत का राष्ट्रीय चिन्ह स्वीकार किया गया और राष्ट्रीय ध्वज में अशोक चक्र को शामिल किया गया।

डॉ. अम्बेडकर ने स्वयं बुद्ध पूर्णिमा के दिन अपने आवास को सजाना आरंभ किया और उत्सव मनाने की परंपरा आरंभ की। विवाह के लिए विवाह विधि का प्रतिपादन किया और बौद्ध चर्या पद्धति तैयार की। बौद्धों में शील और सदाचार का जीवन विकसित करने के लिए डॉ. अम्बेडकर ने 'बुद्धिस्ट सोसायटी ऑफ इंडिया' की स्थापना की जिसकी हर प्रदेश में शाखाएं स्थापित की गई।

डॉ. अम्बेडकर ने शिक्षा के प्रचार-प्रसार के लिए सन् 1945 में 'पीपुल्स एजुकेशन सोसायटी' की स्थापना की और उसके तहत औरंगाबाद में मिलिंद कॉलेज और बंबई में बुद्ध भवन और आनंद भवन के नाम से कॉलेजों का निर्माण करवाया। मिलिंद नाम उन्होंने राजा मिलिंद के नाम पर रखा जो आचार्य नागसेन के संपर्क में आकर बौद्ध बन गए थे। इतना ही नहीं, डॉ. अम्बेडकर ने मुंबई स्थित दादर में अपने निवास स्थान के लिए निर्मित भवन का नाम 'राजगृह' रखा जो भगवान बुद्ध के समय में राजा बिंबिसार की राजधानी हुआ करता था। अपने निवास स्थान को दादर में हिन्दुओं की मुख्य आबादी के बीच बनवाकर डॉ. अम्बेडकर ने यह संदेश दिया कि दलित बस्ती के किनारे रहना स्वीकार नहीं करते और वो मुख्य धारा के एक अंग हैं और हिन्दुओं के बीच में रहने के अधिकारी हैं।

भगवान बुद्ध की मूर्ति की पूजा करने के संबंध में डॉ. अम्बेडकर लिखते हैं, ''मूर्तिपूजा में कोई हर्ज नहीं। मूर्ति बनाना और देवताओं के चित्र बनाना समान है और यदि चित्र बनाने पर कोई आपत्ति नहीं है तो मूर्ति बनाने पर क्या आपत्ति हो सकती है ? हिंदुओं की मूर्तिपूजा पर वास्तविक आपत्ति यह है कि यह मात्र चित्रकारी नहीं है, मूर्ति की मात्र रचना नहीं है, यह सब उससे अधिक है। हिंदू मूर्ति प्राणवान बताई जाती है और वही सब कार्य करती है जो मनुष्य करता है। प्राणप्रतिष्ठा से उनमें जान डाल दी जाती है। बौद्ध भी मूर्तिपूजक हैं। परन्तु जिस मूर्ति अथवा चित्र की वे पूजा करते हैं, वे मात्र प्रतीक हैं।

बाबासाहेब द्वारा सुझाई गई बौद्ध जीवन पद्धति करोड़ों लोगों ने अपनाई है। एक अंग्रेजी दैनिक में प्रकाशित रिपोर्ट के अनुसार सन् 2006 में भारतवर्ष में तीस लाख लोगों ने धर्म दीक्षा ली। बाबासाहेब द्व ारा आरंभ की गई दीक्षा के प्रभाव पर किए गए एक समाजशास्त्रीय सर्वेक्षण के अनुसार जिन लोगों ने धर्म दीक्षा ली उनमें एक नई पहचान और आत्मसम्मान की भावना विकसित हुई जिससे उनके सामाजिक, आर्थिक और मानसिक स्तर में काफी सुधार आया और नवदीक्षित लोगों ने राष्ट्र निर्माण में बहुत महत्वपूर्ण योगदान दिया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर ने भारत के सांस्कृतिक विकास में एक ऐतिहासिक योगदान किया जिसके लिए हमारा देश बाबासाहेब का सदैव ऋणी रहेगा। □

(लेखक बौद्ध धम्म के अध्येता, साहित्यकार और समतावादी चिंतक हैं।)

राष्ट्र निर्माता : बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर

■ प्रो. विवेक कुमार

प्रश्न उठता है कि हम बाबासाहेब को राष्ट्रनिर्माता क्यों कहें? उन्होंने राष्ट्रहित में ऐसे कौन-कौन से कार्य किये, जिसके कारण उन्हें राष्ट्रनिर्माता कहा जाए? ऐसे कई और प्रश्न भी लोगों के मन में उठ सकते हैं। अत: सर्वप्रथम हम यहाँ 'राष्ट्र निर्माण' की प्रक्रिया में बाबासाहेब द्वारा उठाए गए कुछ प्रश्नों को चिह्नित कर उसका उत्तर देने का प्रयास करेंगे जिससे कि यह तथ्य साफ हो जाए कि बाबासाहेब का राष्ट्र चिन्तन क्या था एवं उन्होंने राष्ट्र निर्माण हेतु क्या-क्या प्रयास किये। इस संदर्भ में हम बाबासाहेब के राष्ट्रनिर्माण की प्रक्रिया में, मेरे अनुसार उठाए गए पांच प्रश्नों/बिन्दुओं को चिह्नित करेंगे।

1. बाबासाहेब की राष्ट्र की अवधारणा।
2. क्या भारत एक राष्ट्र है?
3. अगर नहीं तो भारत राष्ट्र क्यों नहीं है?
4. राष्ट्र की उत्पत्ति एवं विकास की प्रक्रिया।
5. राष्ट्र की एकता, अंखण्डता एवं सम्प्रभुता नया करने हेतु बाबासाहेब के उपाय।

बाबासाहेब द्वारा प्रतिपादित राष्ट्र की अवधारणा

राष्ट्र की अवधारणा हेतु बाबासाहेब ने मशहूर राजनीति शास्त्री अरनेस्ट रेंनन के हवाले से कहा, ''राष्ट्र एक जीवित आत्मा है, एक आध्यात्मिक सिद्धांत। यह दोनों चीजें लगती अलग-अलग हैं परन्तु वास्तव में ये दोनों एक ही हैं। एक अतीत है और दूसरा वर्तमान। एक उच्च सांस्कृतिक विरासत की स्मृतियों का सामान्य साममित्व है और दूसरा साथ-साथ रहने की वास्तविक स्वीकृति एवं संकल्प; एक ऐसी अभिलाषा जो प्रतिष्ठित तरह से हमें सौंपी गयी अविभाजित विरासत को बनाये रखना चाहती है। राष्ट्र व्यक्ति की तरह लम्बे प्रयासों, त्याग एवं लगन का परिणाम है। एक वैभवशाली अतीत, महान व्यक्तियों, गौरव.... ये हैं सांस्कृतिक पूंजी जिनके आधार पर राष्ट्र की कल्पना पल्लवित होती है। अतीत में सामूहिक गौरव का होना एवं वर्तमान में सामूहिक संकल्प; अतीत में महान कार्यों को क्रियान्वित करना तथा भविष्य में पुन: ऐसा ही करने का संकल्प-राष्ट्र निर्माण हेतु ये भूलभूत अवस्थाएं हैं। ... अतीत में एक गौरव की विरासत ... भविष्य में एक सदृश अभीष्ट को क्रियान्वित करना; संयुक्त रूप से वेदना को भोगना, आनन्द मन तथा आशान्वित होना; ... यह सब भाषाई तथा जातीय भिन्नता के बाद भी समझा जा सकता है। .... राष्ट्रीय स्मृतियों की जहां तक बात है शोक विजय से अधिक मूल्यवान है क्योंकि हमारे ऊपर कर्तव्य आरोपित करते हैं एवं संयुक्त प्रयास की मांग करते हैं।

क्या भारत एक राष्ट्र है?

सर्वप्रथम, बाबासाहेब द्वारा प्रतिपादित राष्ट्र की अवधारणा के प्रकाश में अगर हम भारत का आंकलन करें तो हम पाएंगे कि भारत एक राष्ट्र नहीं है। इस तथ्य को बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर ने सर्वप्रथम 1930 में उठाया था। मोहनदास करमचन्द गांधी से विवाद के दौरान बाबासाहेब ने उन्हें समझाया कि एन्गलो इण्डियन्स भारत को राष्ट्र नहीं मानते थे। इसी क्रम में बाबासाहेब ने बताया कि बंगाल के राष्ट्रकवि डॉ. रवीन्द्र नाथ टैगोर भी भारत को राष्ट्र नहीं मानते थे। अत: 26 नवम्बर 1949 को जब बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर संविधान निर्मात्री कमेटी को 'संविधान' सौंप रहे थे तो उन्होंने सभी नेताओं को आगाह किया कि राजनीति से ओत-प्रोत व्यक्ति भारत को राष्ट्र बताने में विश्वास करते हैं; जो कि नितांत गलत है।

भारत राष्ट्र क्यों नहीं है?

प्रश्न उठता है कि बाबासाहेब भारत को राष्ट्र क्यों नहीं मानते थे। बाबासाहेब ने स्वयं उत्तर दिया, ''कई हजारों जातियों में बंटे लोग राष्ट्र कैसे हो सकते हैं? .... क्योंकि जातियाँ तो राष्ट्र विरोधी होती हैं। ये सामाजिक जीवन में विलगाव फैलाती हैं तथा दूसरी ओर यह राष्ट्र-विरोधी इसलिए भी हैं क्योंकि यह जाति-जाति के मध्य ईर्ष्या एवं विद्वेष फैलाती हैं। अत: अगर हमें राष्ट्र बनना है तो हमें इस कठिनाई को जल्द ही दूर करना चाहिए। साथ ही साथ राष्ट्र-निर्माण की प्रक्रिया में बाधक एक अन्य तथ्य का भी बाबासाहेब ने उद्घाटन किया। उन्होंने बताया कि भारतीय समाज में 'समग्र वर्ग' की चेतना का नितात अभाव है। यहां हर व्यक्ति अपनी जातीय हित की चेतना से सराबोर है। उनका मानना था कि जब तब जातीय चेतना रहेगी तब तक भाईचारा नहीं पनपेगा। और अगर भाईचारा नहीं होगा तो समानता एवं स्वतंत्रता भी नहीं पल्लवित होगी। ऐसे में राष्ट्र निर्माण कैसे संभव है। इसलिए बाबासाहेब मानते थे कि भारत एक राष्ट्र नहीं है।

हिन्दू मुस्लिम एकता एवं राष्ट्र-निर्माण

जहाँ एक तरफ हिन्दू समाज में जाति व्यवस्था की वजह से भाईचारा या बन्धुत्व का न होना बाबासाहेब के लिये भारत को राष्ट्र में नहीं परिवर्तित करती, वहीं हिन्दू एवं मुसलमानों में भी इसका नितान्त अभाव बाबासाहेब के लिये राष्ट्र निर्माण में बाधक रहा है। बाबासाहेब ने प्रश्न उठाया-क्या हिन्दुओं एवं मुसलमानों के मध्य इतनी निकटता एवं समीपता है कि वे अपने-आप को एक राष्ट्र कह सकते हैं। उन्होंने कहा-क्या हिन्दू-मुसलमान के पास कुछ ऐतिहासिक तथ्य है जिन पर वे सांझे रूप से गर्व कर सकें या दुख मना सकें? अभी तक तो दोनों सेना की दो टुकड़ियों के समान हैं जो एक दूसरे के विरुद्ध कत्ल कर रही हैं। उनके अतीत आपसी विध्वंस का है। चाहे वह राजनीति हों या फिर धर्म। हिन्दू जहां पृथ्वीराज चौहान, राणा प्रताप एवं शिवाजी पर इतिहास पर गर्व करते हैं, वहीं मुसलमान मो. बीन कासिम तथा औरंगजेब पर। धर्म में हिन्दू रामायण, महाभारत एवं गीता से प्रेरणा लेते हैं तो मुसलमान कुरान एवं हदीस से।

क्या भाषा, त्यौहार, जाति और उपनाम आदि सांझी संस्कृति के परिचायक हैं? इस पर बाबासाहेब ने कहा कि समान संस्कृति मात्र यान्त्रिक एकता है, जैविक नहीं। यह चेतना युक्त सांझी विरासत नहीं है बल्कि सुविधा से युक्त व्यावहारिक विरासत है। वैसे भी बाबासाहेब का मानना था कि भाषा, नस्ल एवं देश राष्ट्र का निर्माण करने में आवश्यक एवं परिपूर्ण तत्व नहीं हैं। भाषा के बारे में बताते हुए उन्होंने कहा कि यद्यपि इंगलिश-इंग्लैण्ड, अमेरिका, तथा अन्य कई देशों में बोली जाती है, फिर भी वे एक नहीं अलग-अलग राष्ट्र हैं। इसी प्रकार स्वीटजरलैंड में कई भाषा बोली जाती है। फिर भी वह एक राष्ट्र है। अतः भाषा का होना राष्ट्र-निर्माण के लिये नाकाफी है।

राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया

राष्ट्र की अवधारणा, भारत एक राष्ट्र नहीं है एवं भारत एक राष्ट्र क्यों नहीं; का आंकलन के पश्चात् हम 'बाबासाहेब अम्बेडकर द्वारा राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया' का उल्लेख करेंगे। बाबासाहेब अम्बेडकर द्वारा 'राष्ट्र निर्माण' की प्रक्रिया हेतु हम निम्न पांच बिन्दुओं को चिह्नित कर सकते हैं:

1. भारत के राष्ट्र न होने की अनुभूति
2. व्यक्ति को आत्मनिर्भर आधार पर स्थापित करना
3. बहिष्कृत समुदायों के अधिकार की सुनिश्चित
4. अभिजात वर्गों की सत्ता का विध्वंस
5. एतिहासिकता की विस्मृति

सर्वप्रथम 'भारत एक राष्ट्र नहीं हैं की अनुभूति ही राष्ट्र निर्माण की राह में पहला कदम है। अगर यह अनुभूति नहीं होगी तो न ही हम राष्ट्र के आवश्यक तत्वों की पड़ताल करेंगे और न ही उससे सम्मिलित समूहों की वास्तविक स्थिति की ही करेंगे। और ऐसा ही हुआ है। बस भारत को राष्ट्र मान कर कुछ समुदायों ने सत्ता, सम्पदा एवं संसाधन पर कब्जा कर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। अतः बाबासाहेब द्वारा उठाये गये प्रश्न भारत एक राष्ट्र नहीं है, राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में उठाया गया एक महत्वपूर्ण प्रश्न था।

इसी प्रकार बाबासाहेब द्वारा 'व्यक्ति' को आत्मनिर्भर एवं स्वच्छन्द रूप से स्थापित करने की पहल को राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में उठाया गया दूसरा कदम था। उन्होंने बताया कि भारत में 'व्यक्ति' स्वतंत्र नहीं है। वह या तो वर्ण का हिस्सा या फिर किसी जाति या धर्म का हिस्सा है। अगर उसके पास सांस्कृतिक पूंजी है तो वह उसके अपने श्रम एवं ज्ञान के द्वारा नहीं है, बल्कि उसकी सांस्कृतिक पूंजी उसके वर्ण एवं समुदाय की है। यही पर अगर कोई व्यक्ति लांछित है या उसकी अस्मिता खंडित है एवं उसको सांस्कृतिक बहिष्कार झेलना पड़ रहा; वह अपने व्यक्तिगत कर्म के कारण नहीं है, बल्कि उसकी जाति/वर्ण/समुदाय के कारण है।

बाबासाहेब ने राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में तीसरा कदम बहिष्कृत समुदायों के अधिकारों तथा सम्मान की सुनिश्चितता बताया। इस क्रम में बाबासाहेब ने अस्पृश्यों, जनजातियों, अल्पसंख्यकों तथा महिलाओं के सम्मान तथा अधिकारों को स्थापित करने की बात की। सबसे पहले बाबासाहेब ने दलितों के अधिकारों-मानव अधिकारों तथा नागरिक अधिकारों की स्थापना के लिये प्रयास किए।

'स्व' प्रतिनिधित्व बाबासाहेब दलितों के अधिकारों को स्थापित करने हेतु 'स्व' प्रतिनिधित्व को ज्यादा महत्व देते थे। इसके लिए उन्होंने सरकार में दलितों की आकांक्षाओं का ही प्रतिनिधित्व ही नहीं, बल्कि स्वप्रतिनिधित्व देने के लिए कई प्रतिवेदन दिए। यह माँग इसलिए आवश्यक थी क्योंकि समाज में समग्र वर्ग की चेतना का अभाव है। इस कारण दलितों को भी अपना प्रतिनिधित्व चाहिए। इसी कारण उन्होंने राजनीति ही में नहीं, सरकार की कैबिनेट में भी प्रतिनिधित्व की मांग की थी।

स्व-प्रतिनिधित्व का नैतिक आधार

दलितों के स्व-प्रतिनिधित्व की वकालत करते हुए बाबासाहेब ने इसे नैतिकता के दृष्टिकोण से भी आवश्यक बताया। उन्होंने गोपाल कृष्ण गोखले की उस मांग को उद्धृत किया जिसमें गोखले ने ब्रिटिश साम्राज्य के कर्मचारी तंत्र में भारतीयों के प्रतिनिधित्व की मांग उठाई थी। गोखले का कहना था कि भारतीयों

को नौकरियों में प्रतिनिधित्व नहीं मिल पा रहा है इसलिए उनमें कुंठा व्याप्त हो रही है। भारतीय अपने पूर्ण पौरुष व योग्यता को प्राप्त नहीं कर पा रहे हैं। वे अपनी क्षमता का विकास नहीं कर पा रहे हैं। इस पर बाबासाहेब ने एक समानान्तर रेखा खींचते हुए कहा कि भारतीयों को तो केवल डेढ़ सौ साल से प्रतिनिधित्व नहीं मिला है। और इन डेढ़ सौ वर्षों में ही उनके पौरुष, योग्यता का क्षय हो गया। परन्तु हिन्दुओं ने दलितों को तो ढाई हजार वर्षों से प्रतिनिधित्व नहीं दिया। परन्तु हिन्दुओं ने दलितों के पौरुष, उनकी क्षमता एवं योग्यता के क्षय की कभी परवाह नहीं की। अगर प्रतिनिधित्व को न देने से उपरोक्त का क्षय होता है तो नैतिकता के आधार पर दलितों को सबसे पहले प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए। यह स्व-प्रतिनिधित्व कुछ और नहीं कालान्तर में आरक्षण कहलाया। अतः आरक्षण की व्यवस्था राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में उठाया गया एक और कदम था। यह आर्थिक उत्थान या गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम नहीं।

स्व-प्रतिनिधित्व दलितों के लिए इसलिए भी आवश्यक था क्योंकि अगर यह नहीं होगा तो एक ही वर्ग दूसरे दलित एवं वंचित वर्गों के लिए कानून बनाते रहेंगे। अर्थात् एक वर्ग हमेशा शासक बना रहेगा और दूसरा शासित। अतः जो शासित हैं उन्हें भी कानून बनाने का अवसर प्राप्त होना चाहिए, इसलिए दलितों को स्व-प्रतिनिधित्व की आवश्यकता थी।

मुस्लिम समाज के स्व-प्रतिनिधित्व हेतु बाबा साहब ने संविधान निर्मात्री सभा में पुरजोर वकालत की। उन्होंने कांग्रेस एवं मुस्लिम लीग दोनों को आड़े हाथों लेते हुए कहा कि जब राष्ट्र की नियति का निर्धारण हो रहा हो तो किसी राजनैतिक दल, राजनैतिक नेता या जनता की प्रतिष्ठा का कोई महत्व नहीं होता। राष्ट्र की प्रतिष्ठा सर्वोपरि होनी चाहिए। उनका मत था- राष्ट्र समुदायों की अस्मिताओं को खंडित करके नहीं बना करते, न ही एक समुदाय दूसरे समुदाय पर युद्ध एवं बल प्रयोग द्वारा जीत हासिल कर राष्ट्र का निर्माण कर सकता है।

दलित, पिछड़े, आदिवासियों एवं अल्पसंख्यकों के स्वप्रतिनिधित्व के साथ-साथ बाबासाहेब ने भारतीय हिन्दू नारी के अधिकार की बात को 'हिन्दू कोड बिल' के माध्यम से आगे बढ़ाया। बाबासाहेब ने अपनी दूरदर्शिता का परिचय देते हुए हिन्दू महिलाओं को सभी क्षेत्रों में समानता का संवैधानिक अधिकार दिलाने की अनूठी पहल की। स्त्री की उन्नति एवं प्रगति को उन्होंने हिन्दू समाज में प्रचलित बहुपत्नी विवाह के खात्मे के लिए कानून बनाने की सलाह दी। इसके पश्चात उन्होंने हिन्दू विवाह को धार्मिक अनुष्ठान नहीं बल्कि पति-पत्नी के मध्य एक संवैधानिक अनुबन्ध बनाने की मुहिम चलाई; जो हिन्दू विवाह कानून 1995 के तहत बाद में पारित भी हुआ। बाबासाहेब ने दहेज प्रथा को भी अपराध की संज्ञा दी और उसके खिलाफ भी कानून बनाया। हिन्दू स्त्री को अपने पति से तालाक लेने का अधिकार दिया और बच्चे को गोद लेने में पत्नी सहमति को आवश्यक बनाया। बाबासाहेब चाहते थे कि हिन्दू नारी को उसके पिता की सम्पत्ति का अधिकार होना चाहिए। इस तरह बाबासाहेब ने हिन्दू महिलाओं के अधिकारों की भी वकालत की।

अन्त में बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर ने केवल वर्तमान में राष्ट्र निर्माण एवं विकास की बात नहीं की; परन्तु उन्होंने भविष्य में राष्ट्र की एकता एवं अखंडता कैसे अक्षुण रखी जा सकती है तथा राष्ट्र के प्रजातन्त्र को कैसे और मजबूत किया जा सकता है पर भी अपने सुझाव दिए। सर्वप्रथम बाबासाहेब ने भारतीय राष्ट्र की अखण्डता हेतु आत्म-अवलोकन करने की सलाह दी। उन्होंने कहा कि हमें 'जयचन्दों' से सावधान रहना होगा। ये 'जयचन्द' अपने स्वार्थ के कारण अपनी स्वतंत्रता को भी गिरवी रख सकते हैं। इसके पश्चात बाबासाहेब ने कहा कि हमें अपने प्रजातन्त्र को और मजबूत करना है तो हमें राजनैतिक प्रजातन्त्र को सामाजिक एवं आर्थिक तौर पर और भी गहरा करना होगा। इसके लिए हमें समता, स्वतंत्रता, बन्धुत्व एवं सामाजिक न्याय के आधार पर समाज को तैयार करना होगा। राष्ट्र एवं प्रजातन्त्र की मजबूती हेतु उन्होंने तीसरा मार्ग संवैधानिक प्रक्रियाओं का मजबूती से क्रियान्वयन एवं पालन बताया। वे धरना एवं हड़ताल के सख्त खिलाफ थे। उनको संवैधानिक मानदण्डों पर आधारित संस्थाओं में बहुत विश्वास था। प्रजातंत्र का मजबूत करने के लिये 'व्यक्ति पूजा' को तिलांजलि। बाबासाहेब हीरो वरशिप अर्थात 'नायक पूजा' के घोर विरोधी थे। उनका मानना था कि नायक-पूजा प्रजातान्त्रिक मूल्यों के लिए सबसे बड़ा खतरा है क्योंकि कोई भी नायक कभी भी निरंकुश हो कर सभी स्वतंत्रता को छीन सकता है। विशेष कर भारत जैसे देश में जहां भक्ति आंदोलन अत्यन्त मजबूत रहा है। धर्म में तो भक्ति ठीक है, परन्तु राजनीति में भक्ति के लिए कोई स्थान नहीं होना चाहिए।

काश! बाबासाहेब की इन बातों को राष्ट्र जान पाता। अगर राष्ट्र इन तथ्यों को जान सकेगा तो यह बाबासाहेब को राष्ट्र निर्माता अवश्य कहेगा। बाबासाहेब की जयंती पर मेरी छोटी-सी कोशिश तभी कामयाब होगी जब राष्ट्र उनको केवल दलित मसीहा नहीं, केवल संविधान निर्माता नहीं बल्कि उन्हें राष्ट्र निर्माता कहेगा। □

(लेखक जवाहरलाल नेहरू, वि. वि. में समाजशास्त्र के प्राध्यापक हैं, हाल ही में वे कोलम्बिया विश्वविद्यालय में पढ़ा कर लौटे हैं।)

संवाद

पत्रकारिता और पत्रकार डॉ. अम्बेडकर

■ प्रो. श्यौराजसिंह बेचैन

पत्रकार बनने की पृष्ठभूमि पर विचार करें तो पता चलता है कि डॉ. अम्बेडकर को मजबूरन अलग पत्रकारिता आरम्भ करनी पड़ी। उन्हें ज्ञात हो चुका था कि 'लोक कल्याणेच्छु' नामक पत्र ने महात्मा ज्योतिबा फुले का पत्र इस टिप्पणी के साथ वापस कर दिया था कि पत्र में शूद्र-श्लाघा और ब्राह्मणों के प्रति घृणा है, जबकि पत्र में शूद्र के आत्मसम्मान से अधिक कुछ नहीं था। पर वह उन्हें बराबरी करने जैसा लगा था, जो उन्हें सहन नहीं था। आखिर फुले का वह पत्र 'शुधा वर्तमान' पत्र ने प्रकाशित किया था। पत्रकारिता में यह सेंसरशिप डॉ. अम्बेडकर की चिंता का विषय बनी और वैकल्पिक पत्रकारिता का कारण बनी । जब वे महान सुधारक फुले को शूद्र कह कर अखबार में जगह नहीं दे रहे तो एक अछूत को कैसे अपनी बात रखने देंगे।

विगत दिनों मीडिया में यह खबर आई थी कि सत्तर साल तक मांग करते रहने के बाद दक्षिण के एक हिन्दू मंदिर में दलितों को प्रवेश करने की आजादी मिल गई है। पर मीडिया के बारे में क्या कहा जाए? क्या मीडिया रूपी मंदिर में बैठे मालिक रूपी भगवान और संपादक रूपी पुजारी न्यूजरूम रूपी मंदिर के गर्भगृह तक किसी दलित रूपी अछूत का प्रवेश कभी स्वीकार करेंगे? अकसर यह कहा जाता है कि मीडिया का न्यूजरूम जनता के अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य की लड़ाई लड़ता है। पर जब इस रूम में अभिव्यक्ति के गुलामों के प्रतिनिधित्व का प्रवेश ही संभव न हो तो किसी की अतिरिक्त आजादी और किसी को औसत आजादी के संकट को गहरा और चिरस्थाई बना देता है।

इस सवाल को पत्रकार रोबिन जैफरी ने हिन्दू अखबार में 9 अप्रैल 2012 के अंक में उठाया है और 'भारतीय न्यूजरूम से लापता' शीर्षक के तहत यह सवाल दोहराया है। रोबिन जैफरी ने 2000 में एक पुस्तक लिखी थी। स्मरण दिलाते हुए लिखा है कि उस समय भारत के किसी भी न्यूज रूम में एक भी एस.सी एस.टी. उपलब्ध नहीं था। आज अप्रैल-2013 में रोबिन कहते हैं कि कोई परिवर्तन नहीं हुआ है । कूपर और उनियाल की मीडिया शोध के एक दशक बाद आज भी भारतीय न्यूज रुम में यानी 300 मीडिया निर्णायकों के बीच एक भी दलित आदिवासी मौजूद नहीं है?

यहां रोबिन जैफरी से दलित शिक्षा आन्दोलन और दलित राइटर्स फोरम का, विशेषकर श्री चन्द्रभान प्रसाद द्वारा तैयार मीडिया पेपर मिसिंग है, जबकि यह 'प्रेस परिषद' को एक प्रतिनिधि मंडल द्वारा सौंपा गया था। थोड़ा इतिहास और थोड़ी सी पृष्ठभूमि जानें तो वह सन 1996 का समय था। श्री चन्द्रभान प्रसाद दलित शिक्षा आन्दोलन नामक संगठन चलाते थे। मैंने उनकी प्रेरणा से जे.एन.यू.में 'दलित राइटर्स फोरम' का गठन किया था। 1993 में मैंने अपना पीएच.डी. शोध प्रबंध 'हिन्दी दलित पत्रकारिता पर पत्रकार अम्बेडकर का प्रभाव' तैयार कर दिया था और मैं मीडिया में दलितों की उपेक्षित स्थिति को लेकर अखबारों में लिख रहा था। भारत में वाशिंगटन पोस्ट के ब्यूरो चीफ केन्नेथ जे कूपर के बसंत विहार स्थित कार्यालय पर श्री चन्द्रभान प्रसाद ही मुझे लेकर गए थे। कूपर स्वयं अश्वेत थे। वे अमेरिकन मीडिया में कायम रहे रंग और नस्लभेद के इतिहास के जानकार थे। पर डायवर्सिटी के तहत वे श्वेतों से भी बेहतर मीडिया कमांड संभाल रहे थे। उनकी सहयोगी पत्रकार रमालक्ष्मी ने हमारी वस्तुगत मदद की थी। उन्होंने अमेरिकन मीडिया नीति से हमें अवगत कराया था। रमा लक्ष्मी हमें स्रोत-सामग्री जुटाने में मदद करतीं थीं।

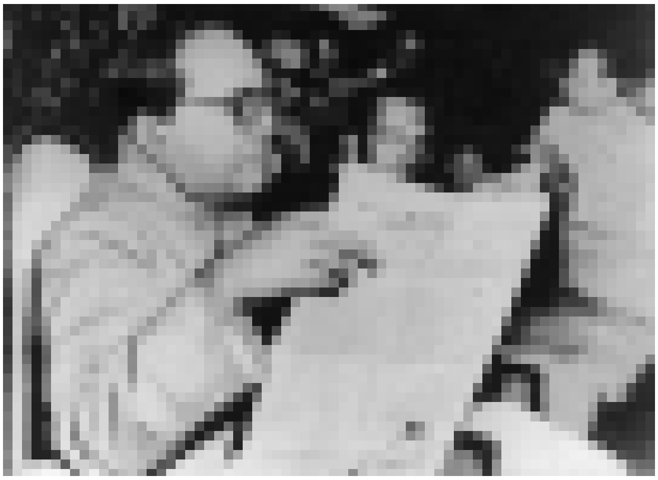

इस दिशा में एक घटना से जिक्र करना चाहूंगा जिसका सरोकार पत्रकारिता से है। एकतरफा रिपोर्टिंग के कारण मीडिया के दृश्य और श्रव्य दोनों माध्यम के सामने एक विवाद सामने आया था। तब बी.एन. उनियाल ने किसी दलित पत्रकार की राय जानने की कोशिश की तब। खोजने पर उन्हें पता चला था कि हिन्दुस्तान के किसी भी अखबार में किसी भी चैनल में किसी भी न्यूज रूम में दलित तो है ही नहीं , उसकी राय कहां से मिलेगी? अपनी खोज के निराशाजनक नतीजे पर पहुंच कर उन्होंने 'इन सर्च ऑफ ए दलित जर्नलिस्ट (एक दलित पत्रकार की खोज) शीर्षक से अंग्रेजी अखबार पायनियर में 16 नवंबर 1996 के अंक में एक लेख लिखा था, जो काफी दिनों तक बहस में रहा था।

कदाचित इसीलिए बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर ने कहा था -'मैं योग्य हूं पर गांधी जी मुझे अपने अखबार का सम्पादक नहीं बना सकते।' हां, मालिक सम्पादक की निर्णायक शक्ति अपने पास रख कर स्तंभ लिखने या पत्र-प्रतिक्रिया देने को जरूर आमंत्रित किया। आज भी राजकीय क्षेत्र दलित को सुप्रीम कोर्ट का जज बना सकता है। राष्ट्रपति भी बना सकता है। विश्वविद्यालय के कुलपति पदों में प्रतिनिधित्व देने की कल्पना कर सकता है। पर किसी राष्ट्रीय दैनिक का संपादक या राष्ट्रीय चैनल का मैनेजर नहीं बना सकता। व्यावसायिक घाटा उठा कर भी वह दलित को मीडिया से दूर-दूर ही रखेगा। यदाकदा चैनल पर बुला कर शक्ल तजो दिखा देगा, टिप्पणी भर के लिए अवसर भी देगा । पर वह तब जब मुद्दा दलित का और सीमित प्रभाव वाला होगा। देश की कला , संस्कृति, साहित्य और शिक्षा जैसे मुद्दों पर उसकी राय शामिल नहीं करेगा।

रोबिन जैफरी के आज के सवाल ने पुराने सर्वे की याद दिलाई है। उस मीडिया सर्वे में दो-तीन वरिष्ठ पत्रकारों के नाम मेरे सामने आए थे। ऐसे पत्रकार जो मीडिया में सामाजिक संतुलन, विविधता और रंग-नस्ल व जातिभेद के कारण बहिष्कृत किए गए समाजों के प्रतिनिधित्व की सशरीर उपस्थिति-अनुपस्थिति का अध्ययन कर रहे थे।

भारत जैसे बहु वैविध्य भरे देश में सामाजिक जिम्मेदारियों से आबद्ध मीडिया कितना जरूरी है और कितनी बड़ी सत्ता है, वह समाज सुधार के लिए भी।

हम यदि इतिहास देखें तो पता चलता है कि गांधी जी ने 1920 में हरिजन पत्रकारिता की बात नहीं की थी। तब उनका ध्यान इंडियन ओपिनियन और यंग इंडिया की ओर था। वे गोलमेज सम्मेलन में यह सिद्ध होने पर कि अछूतों का नेता कहलाने की उनमें ख्वाहिश तो है पर उनका अछूत मुक्ति के लिए किया गया कोई काम नहीं है। तब 1933 में उन्होंने अंग्रेजी में 'हरिजन' निकाला। तब डॉ. अम्बेडकर 'जनता' निकालने लगे थे। डॉ. अम्बेडकर तब केवल मराठी दलितों को ही समझा पा रहे थे, मराठी में ही अखबार निकाल रहे थे। पर गांधी ने अंग्रेजी में हरिजन क्यों आरम्भ किया था? जबकि भारत के अधिकांश दलित या तो निरक्षर थे या अपनी मातृभाषा मराठी में ही जान पा रहे थे। तो जाहिर है, पत्र अंग्रेजों के लिए संबोधित था। उन्हें उन्हीं की भाषा में बताना था कि वे अछूतों की कैसी सेवा कर रहे हैं। आजाद हो रहे भारत के वक्त, निर्मित हो रहे नए राष्ट्र के संदर्भ में मीडिया की अहमियत समझ रहे डॉ. अम्बेडकर ने सब अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की चिंता की न कि किसी जाति विशेष की।

गत वर्ष किसी हिन्दू लेखक ने कहा है कि 'लेखक के लिए सच्ची आत्मकथा लिखना असंभव है।' हिन्दुओं के बारे में यह बात बिल्कुल सही है, इसलिए कि उनके आदर्श यथार्थ में कम होते हैं, वे मनगढंत कथाएं गढ़ने में ज्यादा यकीन करते हैं। वे बेचारे क्या सच्ची आत्मकथा लिखेंगे? वे तो दलितों की आत्मकथाएं पढ़ने की ही ईमानदारी दिखा दें, वही काफी है।

कहा जाता है कि डॉ. अम्बेडकर ने देश की एकता कायम करने के लिए पूना पैक्ट किया और जिन्ना की तरह दलितों के लिए देश के विभाजन की जिद नहीं की। हालांकि बाबू मंगूराम उनके धर्म परिवर्तन वाले कदम से सख्त नाखुश थे और आदि हिंदू आंदोलन के महानायक स्वामी अछूतानंद गुजर चुके थे। यह भी कहा जाता है कि उस मौके पर उन्होंने अछूतों को हिन्दू धर्म से दूर ले जाने वाले ईसाई धर्म या इस्लाम धर्म को नहीं चुना था। इस प्रश्न पर डॉ. अम्बेडकर ने स्वामी अछूतानंद के 'आदि हिन्दू' और आदि धर्मी, जिसे 1929 की जनगणना में जगह मिल चुकी थी, उसको भी नहीं अपनाया था। 14 अक्तूबर 1956 को बौद्ध धम्म अपनाया और 6 दिसंबर 1956 को परिनिर्वाण को प्राप्त हुए। मराठी समाचार पत्र 'दैनिक मराठा' ने 9 दिसंबर 1956 के अंक में डॉ. अम्बेडकर की मृत्यु के दो दिन बाद यह एक कविता प्रकाशित की थी-

अग्निवर आजन्म प्रकाशनु, अग्निवर चिरनिद्राघेशी।

विझेलही चिता परन्तु, प्रकाश राहिल तुझा चिरंतन ।।

अर्थात् जीवन भर आग पर ही प्रकाशित होते रहे, आग ही पर चिर निद्रा ले रहे हो, यह चिता तो बुझ जाएगी, लेकिन तुम्हारा प्रकाश चिरंतन बना रहेगा।

14 अप्रैल 1891 को महू छावनी महाराष्ट्र (अब म.प्र.) में जन्मे बालक भीमराव की परवरिश सैनिक पिता की देख रेख में हुई । अंग्रेजी का महत्व उनके पिता ने ही उनके जेहन में डाला था।

डॉ. अम्बेडकर की देश निर्माण रूपी सेवाओं के आलोक में हम उस वक्त को साफ-साफ देख सकते हैं जब वे देश के स्वतंत्रता आंदोलन को गम्भीरता से समझ रहे थे और चिंतित हो रहे थे यह पाकर कि चौथाई भारत की आजादी तो छुआछूत की भावना रखने वाले स्पृश्य हिंदुओं के पैरों तले दबी है। अस्पृश्यता और गैरबराबरी के रहते दलित भाइयों को कोई आजादी नहीं मिलेगी। इसलिए मनसा-वाचा-कर्मण ाा अपना जीवन तो सामाजिक भेद-भाव के विरुद्ध ही लड़ना है। अंग्रेजों से लड़ने वाले नेताओं की तो भारत में कोई कमी नहीं है,परन्तु अछूत बना कर गुलामों से भी बदतर रखने वालों के जुल्म-ज्यादतियां रोकने वाले बहुत कम हैं। अछूत-मुक्ति कोई बाहर से आकर नहीं करा सकता । इसके लिए इन लाखों मूक-बहिष्कृतों को अपनी स्थिति का बोध करना होगा । दुखद यह कि अस्पृश्यता की भयंकरता ने उन्हें अक्षर ज्ञान तक नहीं होने दिया है। जो थोड़े बहुत पढ़े हैं, वे मातृभाषा मराठी तक ही सीमित हैं। अतः डॉ. अम्बेडकर ने मराठी में ही अखबार निकालने का निश्चय किया।

मूकनायक- पाक्षिक मराठी का प्रवेशांक 31 जनवरी-1920 को आया। यह उनका पहला पत्र मराठी पाठकों की बड़ी सेवा कर सका। पत्र क्यों निकाल रहे हैं, इसकी आवश्यकता और औचित्य क्या है- इस बारे में प्रवेशांक में बताते हुए उन्होंने लिखा: 'बहिष्कृत लोगों के प्रति हो रहे और भविष्य में होने वाले अन्याय से बचने के उपाय सोच कर उनकी भावी उन्नति व उनके मार्ग के सच्चे स्वरूप की चर्चा करने के लिए वर्तमान समाचार पत्रों जैसी दूसरी कोई भूमि नहीं है। अधिसंख्य समाचार विशिष्ट जातियों के हित साधन करने वाले हैं। कभी-कभी उनका आलाप इतर जातियों का अहित कारक होता है।' (मूकनायक-31-जनवरी-1920) पर यह तीन साल से अधिक नहीं चल पाया। उन्होंने जब स्वयं अपने पत्र प्रकाशित किए तो न केवल गैर-दलितों को उसमें जगह दी, बल्कि उन्हें पत्रों का संपादन सौंप कर एक तरह से ताला-चाभी उन्हें सौंप दी। उन्होंने 'मूकनायक' का संपादक ध्रुवनाथ घोलप को बनाया था। घोलप द्वारा पत्र के आर्थिक आय-व्यय का हिसाब अपने हाथ में ले लेने और डॉ. अम्बेडकर को हिसाब न देने के कारण विवाद हुआ जो पत्र के तीन साल चलने के बाद बंद होने का कारण बना। पर विवाद 'ज्ञान प्रकाश' जैसे पत्रों में बाद तक चलता रहा ।

1920-30 का यह वही समय था जब हिन्दी में स्वामी अछूतानंद अपना आदि हिन्दू पत्र प्रकाशित कर रहे थे और पंजाब में बाबू मंगूराम मंगोवालिया 'आदिडंका' अखबार निकाल रहे थे। मूकनायक निकालने की पूर्व तैयारी में तीन साल लगे थे। अक्तूबर 1917 में रूसी क्रांति संपन्न हो चुकी थी। उन्हीं दिनों कोल्हापुर के क्षत्रपति शाहू जी महाराज को शूद्र कह कर ब्राह्मणों ने सम्मान देने से इनकार कर दिया था। कारण यह भी था कि महाराज ने 1902 में अपने कोल्हापुर राज्य संस्थान की नौकरियों में अछूतों को आरक्षण लागू किया था । उस नीति के तहत दत्तोबा संतराम पवार नामक चमार जाति का एक अछूत महाराज का कर्मचारी बना था । उसने डॉ. अम्बेडकर और महाराज की मुलाकात कराई थी । यह मुलाकात 1919 में हुई थी । उसी की सलाह पर महाराज द्वारा 'मूकनायक' को आर्थिक मदद दी गई, जिससे यह आरम्भ हुआ। ढाई हजार के एक मुश्त अनुदान से 'मूकनायक' पत्र का प्रकाशन पुनः शुरू हुआ। महाराज अम्बेडकर को अपने साथ 'माण' गांव की विशाल सभा में ले गए, उनका भाषण सुनकर कहा कि ''अब अछूतों को उनका सच्चा नेता मिल गया है।''

सात माह तक पत्र के लिए संपादकीय अग्रलेख तथा स्फुट लेखन स्वयं डॉ. अम्बेडकर ने किया था। पांच अगस्त 1920 को पांडुरंग नंदराम भटकर को संपादनसूत्र सौंपकर पुनः इंग्लैंड चले गए। लौटकर आए, श्री भटकर के संपादन में मात्र पांच अंक निकले थे । तब तक भटकर का मुंबई से स्थानांतरण हो गया। तब डॉ. अम्बेडकर ज्ञानदेव ध्रुवनाथ घोलप को संपादन-प्रबंधन कार्य सौंपकर फिर विदेश चले गए।...

सार्थक साहित्य में रुचि का एक नमूना प्रवेशांक में प्रकाशित संत तुकाराम की यह कविता है। मैं हिंदी रूपांतर दे रहा हूं-

अभी मैं इच्छाएं धारण करके क्या करूं,

व्यर्थ तुमड़ी बजा कर क्या करूं?

संसार में खामोश लोगों की कोई नहीं सुनता।

अभी कोई लाज, हित सार्थक नहीं।

प्रवेशांक के संपादकीय की भाषा काव्यात्मक है। रूपक-अलंकार की आवृत्ति बार-बार हुई थी। विषय राष्ट्रीय महत्व के और शैली बौद्धिकता-संपन्न और तार्किक है। जैसे उन्होंने लिखा 'हिंदू समाज एक मीनार है। एक-एक जाति इस

मीनार का एक-एक तल है और एक से दूसरे तल में जाने का मार्ग नहीं है। जो जिस तल जाति में जन्म लेता है वह उसी जाति/तल में मरता है।' वे कारणों की पड़ताल करते हैं। परस्पर रोटी-बेटी का व्यवहार न होने के कारण प्रत्येक जाति इन घनिष्ठ संबंधों में स्वयं भू पृथक जाति है। रोटी-बेटी व्यवहार के अभाव होने से परायापन छुआछूत की भावना से इतना ओतप्रोत है कि यह जाति हिंदू समाज से बाहर बहिष्कृत है। ऐसा कहना चाहिए। धर्मशास्त्र, आचार-विचारों के प्रबल गुत्थी है। उदार विचार और अनुदार आचारों का मिश्रण करने वाले धर्मशास्त्रज्ञ किसी मद में मत्त थे, ऐसा लगता है। चेतन-अचेतन सब वस्तु ईश्वररूप हैं। ऐसे उपदेशक तत्ववादियों के आचारों में विलक्षण विषमता रचनाकारों के होश हवाश में रहने के लक्षण नहीं ।'

उन्होंने पत्रकारों से कहा कि 'एक जाति की अवनति का कुप्रभाव दूसरी जाति की उन्नति पर पड़े बगैर नहीं रहेगा। ऐसा हमारा संपादकों को स्पष्ट इशारा है।'

'बहिष्कृत भारत' - 3 अप्रैल 1927 में बहिष्कृत भारत' का प्रवेशांक आया । एक साल बाद ही इस पत्र के लिए अम्बेडकर पर पांच सौ रुपया कर्ज हो गया। 20 मई 1927 'बहिष्कृत भारत' के अंक में डॉ. अम्बेडकर ने लिखा-''हमें अच्छी तरह स्मरण है 1919 में हमने मूकनायक शुरू करने के लिए केसरी अखबार से मुफ्त विज्ञापन छापने की विनती की थी । परन्तु हमारी विनती को घृणा के साथ नकार दिया था। उसके बाद मैं पैसे देता हूं तब तो छापो, तो कहा हमारे पास स्थान रिक्त नहीं है। ऐसा जबाव दिया और कोई अभिप्राय प्रतिक्रिया नहीं दी और ना ही भेंट की।'' पैसे देकर भी उनका विज्ञापन नहीं छपा।

'समता' पत्र का भी एक सामाजिक इतिहास है। संक्षेप में बताया जाए तो डॉ. अम्बेडकर ने समाज सुधार के उद्देश्य से 4 सितंबर 1927 को 'समता संघ' का निर्माण किया था। 'समता पत्र' समता संघ का मुखपत्र था। 29 जून 1928 को समता का प्रवेशांक प्रकाशित हुआ। प्रधान संपादक के रूप में डॉ. अम्बेडकर ने देवराव विष्णु नाईक की नियुक्ति की ।

इतना ही नहीं अपितु बाल गंगाधर तिलक के सुपुत्र श्रीधर बलवंत को 'समता संघ' की पूना शाखा का उपाध्यक्ष भी नियुक्त किया। बलवंत ब्राह्मण थे और वर्ण भेदी व्यवस्था के विरोधी थे। वे सहभोज और अंतरजाति विवाहों के द्वारा जाति-भेद मिटाने का प्रयास कर रहे थे। उन्हें डॉ. अम्बेडकर का पूरा समर्थन प्राप्त था।

अम्बेडकर का सहयोग करने के कारण बलवंत तिलक को पिता के अखबार केसरी में नौकरी नहीं मिली थी। समता का वार्षिक चंदा दो रुपया दो आना था।

'जनता'-समता पत्र बंद होने के बाद समता का ही नाम जनता किया गया था। जनता का प्रवेशांक 24 नवंबर 1930 को आया। प्रवेशांक आ रहा था और डॉ. अम्बेडकर जलपोत द्वारा लंदन जा रहे थे। पोत खुलते-खुलते जनता की प्रति उन्हें वहीं पर पेश की गई थी। उसके बाद 4 फरवरी 1956 तक कुल 26 साल तक यह पत्र चला। और आखिर में 'प्रबुद्ध भारत' पत्र प्रकाशित किया।

जनता के साथ गांधी जी के 'हरिजन' का संवाद महत्वपूर्ण है। गांधी जी ने 1933 में 'हरिजन' अखबार निकाला । उस वक्त डॉ. अम्बेडकर अपना जनता अखबार निकाल ही रहे थे। दोनों पत्रों में एक ही विषय अस्पृश्यता पर स्पष्ट अन्तर आ रहे थे। गोलमेज सम्मेलन लंदन के बाद गांधी जी 'हरिजन' अखबार 1933 निकालने को मजबूर हुए। उसी वक्त डॉ. अम्बेडकर अपना जनता अखबार निकाल रहे थे। दोनों पत्रों में एक ही विषय अस्पृश्यता पर स्पष्ट अन्तर आ रहे थे।

'प्रबुद्ध भारत'- 14-अक्तूबर 1956 को जनता पत्र का नाम बदल कर 'प्रबुद्ध भारत' रखा गया। मुखशीर्ष पर 'अखिल भारतीय दलित फेडरेशन का मुखपत्र' छपना आरम्भ हुआ। देश को जब आजादी मिलने

का अवसर आया तब डॉ. अम्बेडकर ने कम्यूनल अवार्ड के तहत अछूतों के अल्पसंख्यक अधिकारों की रक्षा के सवाल पर अछूतों के लिए पृथक निर्वाचन की मांग कर दी । अंग्रेजों ने कहना शुरू किया कि पहले आप अपने देश वालों को मानवीय अधिकार दो, उसके बाद आजादी की मांग करो ।

प्रह्लाद केशव आत्रे ने 13 अप्रैल 1947 को अपने मराठी पत्रिका का डॉ. अम्बेडकर विशेषांक प्रकाशित किया । उन्होंने स्वीकार किया कि हम पत्रकारों ने डॉ. अम्बेडकर को गलत समझा और उनका साथ नहीं दिया। पर डॉ. अम्बेडकर ने पूना पैक्ट करके देश को टूटने से बचा लिया। यूं उनकी देश भक्ति पर उंगली नहीं उठाई जा सकती।

इस घटना का जिक्र करते हुए माना यह जाता है कि यह इसलिए संभव था कि गांधी जी और मो.जिन्ना का समाज जागा हुआ था। इसलिए उनका नेतृत्व सो रहा था। डॉ. अम्बेडकर का अछूत समाज सोया पड़ा था, इसलिए नेतृत्व जाग रहा था।

असल बात यह थी कि डॉ. अम्बेडकर को भी मुख्यधारा के मीडिया की जरूरत थी।

14 अप्रैल से आरम्भ होकर पूरे महीने भर बाबासाहेब अम्बेडकर की देश के लिए सेवाओं की चर्चा होती है। दलित समाज इसमें विशेष रुचि लेता है। चर्चा में एक कथा अधिसंख्य वक्ताओं के मुंह से सुनने को मिलती है वह है देश की आजादी और भविष्य के स्वरूप को लेकर मीडिया की भूमिका। कहा जाता है कि राष्ट्रीय दैनिकों के संवाददाताओं ने मुलाकात के लिए जब गांधी जी से समय मांगा तो उन्होंने सुबह 11 बजे का समय दिया और मोहम्मद अली जिन्ना साहब से वक्त मांगा तो उन्होने सायं तीन बजे का वक्त मुकर्रर किया, नेहरू जी ने बारह से एक का समय दिया। पर जब डॉ. अम्बेडकर से समय मांगा तो उन्होंने कहा–चौबीस घंटे में जब आप आ सकें मुझे सूचित कीजिएगा। मैं आधी रात भी जागता–काम करता हुआ ही मिलूंगा।'

इस कथा का विश्लेषण वस्तुस्थितिपरक कम भावनापरक अधिक हो जाता है। बाबासाहेब को मानवेतर प्राणी बना कर कहा जाता है कि चूंकि उन्हें अस्पृश्यों को उनके समान अधिकार दिलाने की अपेक्षाकृत अधिक चिंता थी, इसलिए वे चौबीस घंटे जागते रहते थे और काम करते रहते थे, वे कभी सोते नहीं थे। कारण कि गांधी जी और मो.जिन्ना का समाज जाग चुका था । इसलिए उनका नेतृत्व सो सकता था। परन्तु डॉ. अम्बेडकर का समाज सोया पड़ा था इसलिए उन्हें जागना था।

पर पत्रकारिता का जाति–चरित्र ध्यान में रख कर विश्लेषण किया जाए तो इस कथा का सच दूसरा है। वह यह कि मीडिया जिस तरह गांधी जी के साथ था , जिन्ना साहब के पीछे लगा था उस तरह बाबासाहेब अम्बेडकर का मत सामने नहीं ला रहा था। ऐसे में जिन भी व्यापक दृष्टि के पत्रकारों ने उनसे बात करनी चाही। उन्होंने उनकी सुविधा का ध्यान रखते हुए कहा–आप जब आ सकते हैं हम वही वक्त तय करेंगे। इसलिए कि स्वयं बाबासाहेब अम्बेडकर को भी अपना मंतव्य देश के सामने रखने के लिए मुख्यधारा के मीडिया की जरूरत थी।

उनके पास स्वयं की पत्रकारिता का अनुभव था। उनके पत्रों के संपादक ब्राह्मण रखे गए थे। देवराव विष्णु नाईक गोवर्धन ब्राह्मण थे और ग.नी.सहसबुद्धे चितपावन ब्राह्मण थे। उन जैसे अन्य संपादकों की नियुक्तियां भी स्वयं डॉ. अम्बेडकर ने की थीं।

इस तरह लोकतंत्र में विचारों का पक्ष–विपक्ष चलता रहता है। डॉ. अम्बेडकर ने देश को आधुनिक और डेमोक्रेटिक बनने में बड़ा योगदान दिया। संविधान के वे जनक कहे जाते हैं। हिन्दू महिलाओं को सम्पत्ति, समाज और परिवार में समानता दिलाने, तलाक और पुनर्विवाह के लिए कानून बनाने, 'हिन्दू कोड बिल' संसद में पेश करने और उसके लिए कानूनमंत्री पद से त्यागपत्र दे कर अपनी प्रतिबद्धता सिद्ध करना हमारे आधुनिक भारत की बड़ी घटनाएं हैं।

डॉ. अम्बेडकर स्मरणीय हैं। उन्होंने देश की एकता कायम करने के लिए पूना पैक्ट किया। धर्म परिवर्तन के मौके पर उन्होंने अछूतों को हिन्दू धर्म से दूर ले जाने वाले ईसाई धर्म या इस्लाम को नहीं चुना था। इस प्रश्न पर डॉ अम्बेडकर ने स्वामी अछूतानंद के 'आदि हिंदू' और आदि धर्म जिसे 1929 की जनगणना में जगह मिल चुकी थी, उसको भी नहीं अपनाया था। मराठी समाचार पत्र आरम्भ कर देश के स्वतंत्रता आंदोलन को, दलित स्वातंत्रय अपेक्षित गम्भीरता के साथ समझा और पाया कि चौथाई भारत की आजादी तो छुआछूत की भावना रखने वाले स्पृश्य ब्राह्मणवादी के पैरों तले दबी है। अस्पृश्यता और गैरबराबरी के रहते दलित भाइयों को कोई आजादी नहीं मिलेगी। इसलिए 'मनसा वाचा कर्मणा' अपना जीवन तो सामाजिक भेद–भाव के विरुद्ध ही लगना है। अंग्रेजों से लड़ने वाले नेताओं की तो भारत में कोई कमी नहीं है, परन्तु अछूत बनाकर गुलामों से भी बदतर रखने वालों के जुल्म ज्यादतियां रोकने वाला कोई नहीं है। पर अछूत मुक्ति कोई बाहर से आकर नहीं करा सकता, इसके लिए इन लाखों मूक–बहिष्कृतों को अपनी स्थिति का बोध करना होगा। □

(लेखक दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में प्राध्यापक हैं, 'दलित पत्रकारिता पर पत्रकार अम्बेडकर का प्रभाव' पर इन्होंने शोध कार्य किया है।)

भारत में श्रम कानूनों पर विश्लेषणात्मक अध्ययन

▪ डॉ. एस.एल. धनी

संसार में श्रम कानून 18वीं शताब्दी में आरंभ होने वाली औद्योगिक क्रांति का परिणाम हैं जब उद्योगों में भारी मात्रा में श्रमिकों को लगाना अनिवार्य हो गया था। तथा मालिक और मजदूर के बीच के सम्बन्धों के बारे में पारम्परिक व्यवस्था अपर्याप्त सिद्ध हो गई थी। उस समय खदानों में एवं औद्योगिक उत्पादन की अत्याधिक मात्र के कारण श्रमिकों को सामान्य सुरक्षा मिलना कठिन हो गया था। दूसरी ओर समाज में नई चेतना ओर राजनीतिक कारणों से नई जागृति ने जन्म लिया था।

श्रम कानूनों की वर्तमान स्तर की प्रगति धीरे धीरे हुई थी क्योंकि संसार भर में श्रम कल्याण सम्बन्धी स्वीकार्यता 20वीं शताब्दी से पहले सम्भव नहीं हो पाई थी । इस बारे में शुरुआत ब्रिटिश हेल्थ एण्ड मोरल्स ऑफ अपरेंटिस एक्ट 1802 से हुई थी। इसी प्रकार की कार्यवाही ज्यूरिच में 1815 में और फ्रांस में 1841 में हुई थी। 1848 तक स्विट्जर लैंड में काम के घंटों की सीमा तय हुई थी और 1883 में जर्मनी में श्रमिकों के बीमा और मुआवजे की व्यवस्था हो पाई थी। उधर 1890 के बाद में न्यूजीलैण्ड में पंचफैसले की व्यवस्था हो गई थी। अमेरीका में श्रम कानूनों की पहल 19वीं शताब्दी के अंत तक हो पाई थी। रूस में 1917 के अक्टूबर क्रांति से पहले श्रम कानून न के बराबर थे।

भारत 18वीं शताब्दी में न केवल कृषि प्रधान देश था वरन् कारखाने के उत्पादन में भी ख्याति प्राप्त देश था। एशिया और यूरोप के बाजार भारत की मंडियों में बने सामान से भरे रहते थे। अंग्रेजों ने इस उत्पादन को रोका था क्योंकि वे चाहते थे कि भारत केवल कच्चा माल देने वाला देश बन कर ही रहे। अंग्रेजों की इस नीति के कारण राष्ट्रीय भावना पनपी थी और स्वदेशी क्रांति ने जन्म लिया था।

भारत में श्रम कानूनों की पहल चायबागानों से 1863 में हुई थी। परन्तु उस समय जोर इस बात पर दिया गया था कि मालिकों के अधिकार सुरक्षित रखे जाए।

भारत में पहले पहल माईन्स एक्ट 1923 में और फैक्टरी एक्ट 1934 में बना था जिनसे श्रमिकों के हितों की काफी रक्षा हुई। अब तक कई कानून बन चुके हैं जिनसे श्रमिकों के हितों की रक्षा हुई है, उद्योगों में उत्पादन बढ़ा है तथा देश की आर्थिक दशा भी सुधरी है।

अनेकानेक ऐसे विधान हैं जो कुछ विशिष्ट उद्योगों से सम्बन्धित रोजगार शर्तों, कार्य के माहौल और अन्य कल्याण की अपेक्षाओं को विनियमित करते हैं। ये अधिनियम फैक्टरी और कार्यशालाओं, खान और खनिजों, बागानों, दुकानों और प्रतिष्ठानों तथा परिवहनों से सम्बन्धित हैं। कुछ मुख्य विधान निम्नलिखित हैं:

- अभ्रक खान श्रम कल्याण निधि अधिनियम, 146 इसका अधिनियम अभ्रक खनन उद्योग में लगे हुए श्रमिकों के कल्याण में सुधार करने के लिए कार्यकलापों का वित्तपोषण करने हेतु निधि का गठन करने हेतु किया गया है।
- फैक्टरी अधिनियम, 1948 मुख्य विधान है जिसका अधिनियम फैक्टरियों में कार्य परिस्थितियों को विनियमित करने के लिये किया गया है। अधिनियम के अनुसार फैक्टरी का अर्थ है कोई भी परिसर उसका अहाता सहित:

1. जहां 10 या अधिक कामगार कार्य कर रहे हैं या पहले बारह माह के किसी भी दिन कार्य कर रहे थे और जिसके किसी भी भाग में विद्युत का सहायता से विनिर्माण का कार्य किया जा रहा है,

2. जहां 20 या इससे अधिक कामगार कार्य कर रहे हैं या पहले बारह मास के किसी भी दिन कार्य कर रहे थे और उसके किसी विभाग में विद्युत की सहायता के बगैर विनिर्माण की प्रक्रिया की जाती है परन्तु इस में खान शामिल नहीं है ।

अधिकतर अधिनियम श्रम और रोजगार मंत्रालय द्वारा इसके फैक्टरी परामर्श सेवा एवं श्रम संस्थान महानिदेशालय के जरिए प्रशासित होता है और राज्य सरकारों के द्वारा अपने फैक्टरी निरीक्षालय के माध्यम से प्रशासित होता है ।

डी जी एफ एस एल आई फैक्टरियों और गोदी में व्यावसायिक सुरक्षा एवं स्वास्थ्य राष्ट्रीय नीतियां तैयार करने में मंत्रालय के लिए तकनीकी कार्य करता है।

इस के अतिरिक्त कई अन्य प्रकार के अधिनियम हैं जिनका विवरण नीचे दिया जा रहा है:

- बागान श्रम अधिनियम, 1951 बागान श्रमिकों के कल्याण की व्यवस्था करता है और बागानों में कार्य परिस्थितियों को विनियमित करता है। अधिनियम के अनुसार बागान शब्द का अर्थ है कोई भी बागान, जिसके लिए यह अधिनियम चाहे पूर्ण रूप से या आंशिक रूप से प्रयोज्य होता है और

इसमें कार्यालय, अस्पताल, दवाखाना, स्कूल और अन्य कोई परिसर ऐसे बागानों में संबंधित किसी प्रयोजन के लिए प्रयुक्त होता है शामिल है परन्तु इसमें परिसर में कोई फैक्टरी शामिल नहीं होती है, जिसके लिए फैक्टरी अधिनियम 1948 के प्रावधान प्रयोजय होते हैं।

यह अधिनियम श्रम मंत्रालय द्वारा अपने औद्योगिक सम्पर्क प्रभाग के माध्यम से प्रशासित होता है। प्रभाग का संबंध विवादों के निपटान और औद्योगिक संबंध श्रम कानूनों में संशोधन करने के लिए संस्थागत ढांचा सुधारने से है। यह सुनिश्चित करने के लिए कि देश को स्थिर, सम्मानित और सक्षम कार्य बल जो शोषण मुक्त हो और उच्च स्तरीय प्रतिफल देने में सक्षम हो, दिलाने के प्रयास में केन्द्रीय औद्योगिक संबंध तंत्र के निकट समन्वयन में कार्य करता है

- खान अधिनियम, 1952 में कोयला अलौह धातु एवं तेल खानों में स्वास्थ्य, सुरक्षा और कामगारों के कल्याण संबंधी उपायों के लिए प्रावधान हैं। अधिनियम के अनुसार शब्द ''खान'' का अर्थ है कोई खुदाई जहां खनिज की खोज के उद्देश्य से कोई कार्य या खनिज प्राप्त किया गया हो या किया जा रहा है। और इसमें सभी बोरिंग, बोर हाल्स, तेल का कुआं और अनिवार्य रूप से कच्चा तेल शामिल हों शाफ्ट, खुली खदान का कार्य, कन्वेयर्स या वायु रोपवेज, यान, मशीनरी कार्य, रेलवे, ट्रामवेज, स्लाइडिंग कार्यशाला, विद्युत केन्द्र आदि शामिल हैं। या कोई भी परिसर जो खनन कार्य से संबंधित है और जो खनन क्षेत्र के निकट या खनन क्षेत्र में हो, शामिल है।

अधिनियम श्रम और रोजगार मंत्रालय द्वारा खान सुरक्षा महानिदेशालय (डी जी एम) के माध्यम से प्रकाशित होता है। भारत सरकार में डी जी एम एस खानों और तेल क्षेत्रों में सुरक्षा के निए विनियामक एजेंसी है। यह निरीक्षण और पूछ-ताछ करता है, कामगारों की सुरक्षा के विभिन्न पहलुओं पर गोष्ठियों/सम्मेलनों का आयोजन करता है।

- मोटर परिवहन कामगार अधिनियम, 1961 का अधिनियम मोटर परिवहन कामगारों के कल्याण और उनके कार्यों की परिस्थिति को विनियमित करने की व्यवस्था करने के लिए किया गया है। यह प्रत्येक मोटर परिवहन उपक्रम के लिए लागू होता है जहां पांच या अधिक मोटर परिवहन कामगारों से कम कामगार कार्य करते हैं, के लिए इस अधिनियम के सभी या किसी प्रावधान को लागू कर सकती है। अधिनियम के अनुसार मोटर परिवहन उपक्रम का अर्थ है' 'ऐसा उपक्रम जो सवारी या माल ढोने के कार्य में या दोनों किराए पर भाड़े में या पुरस्कार पर करता है, इसमें निजी वाहन शामिल है।

मोटर परिवहन उपक्रम का प्रत्येक नियोक्ता जिसके लिए यह अधिनियम लागू होता है। इस अधिनियम के तहत उपक्रम का पंजीकरण कराना होगा। कोई व्यस्क मोटर परिवहन कामगार को किसी भी दिन आठ घंटे से अधिक या सप्ताह में अड़तालीस घंटे से अधिक कार्य करने की अनुमति नहीं है। किसी किशोर की नियुक्त नहीं की जाएगी या उसके लिए दिन में छह घंटे से जिसमें आराम के अंतराल आधे घंटे के साथ 10 बजे से 6 बजे सुबह शामिल है। इससे अधिक किसी मोटर परिवहन उपक्रम में मोटर परिवहन कामगार के रूप में करना अपेक्षित नहीं है।

ऐसे प्रतिष्ठानों में जहां सरकार उपयुक्त सरकार हैं अधिनियम के प्रवर्तन की जिम्मेदारी मुख्य श्रम आयुक्त (केन्द्रीय) के कार्यालय पर होती है और राज्य की परिधि के अंतर्गत स्थित प्रतिष्ठानों के लिए संबंधित राज्य सरकारों पर होती है।

असंगठित क्षेत्र में कामगारों को सामाजिक सहायता के उपाय प्रदान करने के लिए भी श्रम एवं रोजगार मंत्रालय के अधीन पांच कल्याणकारी निधियां स्थापित की गई हैं। इन निधियों का लक्ष्य कामगारों को आवास, चिकित्सा देखभाल, शैक्षिक और मनोरंजक सुविधाएं प्रदान करना है जो बीड़ी उद्योग, कुछ गैर कोयला खानों में नियुक्त हैं, और सिनेमा कामगार हैं। ऐसी निधियों का वित्त पोषण संबंधित उपकर/निधि अधिनियम के तहत लगाए गए उपकर से प्राप्त लाभ से किया जाता है। इस प्रकार अधिनियम निम्नलिखित हैं:-

संविदा श्रम (विनियमन और निरस्तीकरण) अधिनियम, 1970 का अधिनियम संविदा श्रम की नियुक्ति विनियमित करने के लिए किया गया था ताकि उसे प्रत्यक्ष रूप से नियुक्त श्रमिक के समकक्ष बनाया जा सके जो कार्य की परिस्थितियों एवं कुछ अन्य लाभों के संबंध में होता है। संविदा श्रम का अभिप्राय ''प्रयोक्ता उद्यमों के लिए संविदाकार द्वारा लगाए गए कामगार।'' ये कामगार साधारणतः वार्षिक कार्यों निर्माण उद्योग, पत्तनों और गोदी, तेल क्षेत्रों, फैक्टरियों, रेलवे, जहाजरानी, एयरलाइन्स सड़क परिवहन आदि में लगाए जाते हैं।

अधिनियम का कार्यान्वयन केन्द्र और राज्य सरकारों दोनों के द्वारा किया जाता है। केन्द्र सरकार का क्षेत्राधिकार रेल, बैंकों, खानों आदि पर है और राज्य सरकारों का क्षेत्राधिकार उस राज्य में स्थित यूनिटों पर है। केन्द्रीय परिधि में केन्द्रीय औद्योगिक संबंध मशीनरी (सी आई आर एम) जिसका अध्ययन के प्रावधानों और उसके तहत बनाए नियमों का प्रवर्तन करने की जिम्मेदारी सौंपी गई है।

- चूना पत्थर और डोलोमाइट खान श्रम कल्याण निधि अधिनियम चूना पत्थर और डोलोमाइट खानों में नियुक्त व्यक्तियों के कल्याण के लिए कार्यकलापों का निधि पोषण करने हेतु चूना पत्थर और डोलोमाइट पर उपकर लगाने और उसका संग्रहण की व्यवस्था करने के लिए किया गया है।
- लौह अयस्क खान, मैंग्नीज अयस्क खान और क्रोम अयस्क खान श्रम कल्याण निधि अधिनियम, 1976-इसका अधिनियम लौह आयस्क खानों, मैंग्नीज अयस्क खानों और क्रोम अयस्क खानों में नियुक्त व्यक्तियों के कल्याण सुधार करने वाले क्रियाकलापों का वित्त पोषण करने की व्यवस्था करने हेतु किया गया है।
- बीड़ी कामगार कल्याण निधि अधिनियम, 1976- इस अधिनियम के माध्यम से बीड़ी प्रतिष्ठानों में लगे व्यक्तियों के कल्याण तथा उनका स्तर सुधारने वाले उपायों की व्यवस्था करने के लिए किया गया है।
- सिनेमा कामगार कल्याण निधि अधिनियम, 1981-इसके द्वारा अधिनियम सिनेमा कामगारों का कल्याण करने वाले क्रियाकलापों के वित्त पोषण की व्यवस्था करने के लिए किया गया है।

उपर्युक्त अधिनियम यह व्यवस्था करते हैं कि संबंधित कामगारों के कल्याण की व्यवस्था करने के लिए अनिवार्य उपायों और सुविधाओं के संबंध में किए गए व्यय को पूरा करने के लिए निधि का प्रयोग केन्द्र सरकार द्वारा किया जाए।

- भवन एवं अन्य कामगार (रोजगार और सेवा की परिस्थितियों का विनियमन) अधिनियम, 1996 का अधिनियम भवन और अन्य निर्माण कामगारों की नियुक्ति और कार्य की परिस्थितियों को विनियमित करने के लिए और उनकी सुरक्षा, स्वास्थ्य और कल्याणकारी उपायों को विनियमित करने के लिए किया गया है। यह अधिनियम प्रत्येक प्रतिष्ठान के लिए प्रयोज्य है जिसमें दस या अधिक कामगार भवन या अन्य निर्माण कार्य में लगता है और ऐसी परियोजना के लिए जिसकी लागत 10 लाख रु. से अधिक हैं इस अधिनिमय में दुर्घटना, वृद्धावस्था पेंशन, मकान बनाने के लिए ऋण समूह बीमा के लिए प्रीमियम, शिक्षा चिकित्सा खर्च के लिए वित्तीय सहायता और मातृत्व लाभ के लिए कामगारों को तत्काल सहायता का प्रावधान निहित है।

औद्योगिक विवाद के कुछ मुख्य कारण इस प्रकार हैं:-

- अधिक वेतन और भत्तों की मांग करना
- बोनस का भुगतान करने और उसकी दर निर्धारित करने की मांग करना।
- सामाजिक सुरक्षा के लाभों को बढ़ाने की मांग करना।
- कार्य की अच्छी और सुरक्षित दशाओं जिसमें कार्य दिवस के घंटे, मध्यावकाश और कार्य के बीच-बीच में अवकाश और शारीरिक श्रम के लिए परिवेश की मांग करना।
- श्रम कल्याण और अन्य लाभों में वृद्धि करने की मांग करना। उदाहरणार्थ, अच्छी कैंटीन, विश्राम, मनोरंजन और आवास की सुविधा, दूरवर्ती संस्थानों से आने जाने की यात्रा की व्यवस्था करना आदि।
- इसके अलावा, खराब कार्मिक प्रबंध; परस्पर विधायी उपाय एवं सरकारी नीतियों; और मनोवैज्ञानिक घटकों जैसे कि कर्मचारी द्वारा उसकी आत्माभिव्यक्ति, व्यक्तिगत उपलब्धि और उन्नति की मूल आकांक्षा की तुष्टि करने के लिए अवसर प्रदान करने से इंकार करना, आदि के कारण भी श्रमिकों संबंधी समस्याएं हो सकती हैं।

भारत में, औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 सभी औद्योगिक विवादों की जांच पड़ताल एवं निपटान करने के लिए एक प्रमुख विधान है। इस अधिनियम में उन संभावनाओं की हड़ताल अथवा तालाबंदी की जा सकती है, उन्हें अवैध अथवा गैर-कानूनी घोषित किया जा सकता है, कर्मचारी की जबरदस्ती कामबंदी, छंटनी, उसे सेवामुक्त करना अथवा बर्खास्त करने की दशाओं, उन परिस्थितियों जिनमें औद्योगिक इकाई को बंद किया जा सकता है और औद्योगिक कर्मचारियों तथा नियोजकों से जुड़े अन्य कई मामलों का उल्लेख किया गया है।

यह अधिनियम श्रम मंत्रालय द्वारा उसके औद्योगिक संबंध प्रभाग के माध्यम से प्रशासित किया जाता है। यह निम्नलिखित के माध्यम से सद्भावपूर्ण औद्योगिक संबधों को सुनिश्चित करता है:-

- केन्द्रीय क्षेत्र में औद्योगिक संबंधों की निगरानी;
- विवादों का निपटान करने के लिए औद्योगिक विवादों में हस्तक्षेप, मध्यस्थता और उनका समाधान करना;
- हड़ताल और तालाबंदी को रोकने के लिए हड़ताल और तालाबंदी की संभावना की स्थिति में हस्तक्षेप;
- व्यवस्थाओं और पंचाटों का कार्यान्वयन। अधिनियम के अनुसार, 'औद्योगिक विवाद' शब्द का अर्थ है नियोजकों और नियोजकों के बीच, अथवा नियोजकों और कर्मचारियों के बीच, अथवा कर्मचारियों और कर्मचारियों के बीच किसी तरह का

विवाद अथवा मतभेद जिसका संबंध नियोजन भिन्न मामले अथवा नियोजन की शर्तों अथवा किसी व्यक्ति के श्रम की दशाओं से है। अधिनियम के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार हैं:-

- औद्योगिक विवादों का न्यायसंगत, उचित और शांतिपूर्ण ढंग से निपटारा करने के लिए एक उपयुक्त मशीनरी प्रदान करना।
- नियोजक और कर्मचारियों के बीच मित्रता एवं अच्छे संबंध स्थापित करने और उन्हें कायम रखने के उपायों को बढ़ावा देना।
- गैर-कानूनी हड़तालों और तालाबंदी को रोकना।
- कर्मचारियों को जबरदस्ती कामबंदी, छंटनी, गलत तरीके से बर्खास्तगी और उत्पीड़न से राहत प्रदान करना।
- सामूहिक सौदाकारी को बढ़ावा देना। कर्मचारियों की दशा सुधारना।
- अनुचित श्रम प्रणालियों को रोकना।

इस अधिनियम के तहत औद्योगिक विवादों के समाधान और निर्णय के लिए एक सांविधिक तंत्र का गठन किया गया है।

यह अवलोकनीय है कि उपरोक्त अधिनियम मुख्यतय: 1948 और 1996 के बीच के हैं। इसका अर्थ यह है कि भारत में इस प्रकार के अधिनियम केवल भारत की आजादी के बाद के ही हैं। यह भी उल्लेखनीय है कि जिस विषय सम्बन्धी अधिनियम जिस वर्ष में बने हैं उस वर्ष से पहले सम्बन्धित क्षेत्र में कोई कानूनी व्यवस्था नहीं थी। इस बारे में भारतीय जाति व्यवस्था की पृष्ठभूमि में थोड़ा विचार कर लेना युक्तियुक्त होगा।

भारत में श्रम कल्याण का विषय प्रकटतया मानवाधिकारों से सम्बन्ध रखता है। प्राचीनकाल से ही भारत में परस्पर विरोधी दो विचार धारायें प्रचलित रही हैं जो आपस में सदा से टकराती रही हैं । एक विचारधारा वेदमूलक है और दूसरी वेदविरोधी है। वेद मूलक विचारधारा समाज को चार वर्णों में बांटती है-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र । पहले तीन वर्णों को द्विज कहा जाता है इनके बारे में यह माना जाता है कि वे वैदिक संस्कारों के माध्यम से दूसरा जन्म ले लेते हैं । शूद्र लोग वैदिक संस्कारों से वंचित हैं इसलिये वे पशु तुल्य हैं और इसी कारण वे मानव न होकर हर प्रकार के मानवाधिकारों से वंचित हैं । वर्ण-व्यवस्था के अधीन द्विजों को वे कर्तव्य दिये गये हैं जिनका पालन करते हुए उन्हें कोई शारीरिक कष्ट नहीं होता । दूसरी ओर शूद्रों को वे सब कार्य दिए गये हैं जिनमें उन्हें केवल शारीरिक कष्ट ही भोगने पड़ते हैं।

गौतम बुद्ध ने वैदिक व्यवस्था को नकारते हुए समाज के उक्त विभाजन को नहीं माना। और यह प्रस्तावित किया गया है कि वह संयम से काम लेते हुए जीवन को वैदिक रीति रिवाजों और सदाचार के अनुसार बिताते हुए यदि ब्राह्मण है तो परतत्व में लीन हो जाये और यदि क्षत्रिय अथवा वैश्य है तो अपने अपने वर्ण के कर्तव्यों को निभाता हुआ अगले जन्म में ब्राह्मणकुल में जन्म लेने की कामना करे ताकि उसे भी ब्रह्मलीन होने का अवसर प्राप्त हो सके। बुद्ध ने कहा कि जीवन में दुख है, दुख का कारण है और उस कारण को दूर करके निर्वाण को प्राप्त हो जाएं।

वर्ण-व्यवस्था के अनुसार शूद्र को श्रम करने का ही अधिकार है इसलिये श्रम कल्याण का कोई औचित्य नहीं है। इस दृष्टि से वैदिक कालीन भारत में श्रमकल्याण के चिन्तन के लिये कोई गुंजाइश ही नहीं थी। परन्तु पाश्चात्य देशों में जहां मुख्यतया ईसाई धर्म प्रचलित था इसलिये वहां चातुवर्ण्यम वाली विचारधारा का जन्म ही नहीं हुआ।

उन देशों में श्रमिक वर्ग औद्योगिक क्रान्ति के कारण उत्पन्न हुआ था। इसी कारण से श्रम कानून और श्रम कल्याण की बात को सहज ही स्वीकार कर लिया गया।

वर्ण-व्यवस्था के कारण ही भारत की आजादी की लड़ाई में शूद्रों की आजादी की ओर साधारण स्वतंत्रता सेनानियों का ध्यान ही नहीं गया। मैंने 2003 में छपी अपनी पुस्तक इण्डियन फ्रीडम स्ट्रगल न्यू इन्साइट में यह सिद्ध किया था कि भारत में अंग्रेजी सरकार के लम्बे अरसे तक रहने का मुख्य कारण यह था कि वर्ण-व्यवस्था के कर्णधारों ने अंग्रेजों के साथ यह समझौता कर रखा था कि यदि स्थानीय प्रशासन के स्तर पर द्विजों में वे अधिकार बांट दिए जाएं जो वर्ण व्यवस्था के अधिकारों के अनुरूप हों तो वे अंग्रेज जब तक चाहें राज कर सकते हैं।

अंग्रेजों ने यह शर्त मान ली थी जिसके फलस्वरूप जब यथा समय अंग्रेज सरकार को अपने ही कारणों से देश को छोड़ कर जाने का प्रश्न उत्पन्न हुआ तो तत्कालीन कांग्रेस नेतृत्व ने केवल सत्ता के पुराने ढर्रे पर ही स्थानान्तरण करने को कहा था। यदि डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने गोलमेज कांफ्रेंस में तत्कालीन 'डिप्रेस्ड क्लासेस' के लिए पृथक मताधिकार की मांग नहीं उठाई होती तो यह संभव था कि सत्ता के बारे में यथास्थिति ही रह जाती और भारत में लोकतंत्र की स्थापना हो ही नहीं पाती। और यदि ऐसा हो जाता तो शायद वर्तमान श्रम कानूनों की आवश्यकता उत्पन्न ही नहीं होती।

यदि डॉ. भीमराव अम्बेडकर और हिन्दू नेतृत्व के बीच 1932 में पूना पैक्ट वाला समझौता नहीं होता तो यह भी संभव था कि उनको भारत के संविधान के मुख्य निर्माता होने का गौरव भी प्राप्त नहीं होता। और संविधान में मौलिक अधिकारों और श्रम कल्याण संबंधी धाराओं को भी स्थान न मिल पाता। □

(लेखक रिटायर्ड आई.ए.एस. हैं।)

डॉ. अम्बेडकर का जीवन दर्शन

▪ हेमलता महिश्वर

भारत रत्न बाबासाहेब डॉ. भीमराव रामजी अम्बेडकर का जीवन हर कदम पर चुनौतियों का सामना करता हुआ नित नूतन मंजिलों का सफर तय करता रहा। हर कदम पर नई चुनौतियां जैसे उनका स्वागत कर रही होती थीं। अपने अथक प्रयासों से हमेशा ही उन्होंने सफलता प्राप्त किया। उनकी सफलता उनके अकेले के लिए नहीं थी, उनकी करुणा का विस्तार ऐसा था कि समूची मानवता को समाहित किए हुए था। 'समता, स्वतंत्रता और बंधुता' को फलीभूत करने हेतु उन्होंने अपनी अंतिम सांस तक कार्य किया। 'प्रज्ञा, शील, करुणा' को चरितार्थ करने हेतु उन्होंने अपना सारा जीवन लगा दिया। यह सफर इतना भी आसान न था।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर का जन्म चौदह अप्रैल सन अट्ठारह सौ इक्यानबे को भीमाबाई और रामजी सकपाल की चौदहवीं संतान के रूप में मध्यप्रदेश के इंदौर के महू नामक स्थान पर हुआ। पिता रामजी सकपाल अंग्रेज सरकार की सेना में नौकरी कर रहे थे। वे शिक्षा के महत्व को जानते थे। इसलिए वे अपने पुत्र की शिक्षा के प्रति न केवल जागरूक थे। बल्कि संवेदनशील थे। बालक भीमराव के शैक्षिक जीवन में यदि विभिन्न प्रकार की कठिनाइयां समय-समय पर फन काढ़े बैठ जातीं तो पिता रामजी सकपाल के समक्ष भी उनकी शिक्षा को पूर्ण करने हेतु तरह-तरह की मुसीबतें सामने आ जातीं। सामाजिक अवमानना और आर्थिक तंगी का चोली दामन का साथ था। जाति के दंश उन्हें शिक्षित, अर्द्धशिक्षित एवं अशिक्षित समुदाय से सतत् मिलते रहे। पानी की बूंद के लिए तड़पाया गया तो हिंदू कोड

बिल ने भी उन्हें सभ्य समाज के कुरूप चेहरे से परिचय कराया। फिर भी तमाम प्रकार की कठिनाइयों को पार करते हुए उन्होंने न केवल विश्व के नामचीन विश्वविद्यालयों से अपनी शिक्षा पूर्ण की, अपितु सारे देश की जनता को उनके अधिकारों एवं कर्तव्यों के प्रति सचेत किया।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर के सतत् विकास में उनकी पत्नी रमाबाई का खामोश सहयोग अविस्मरणीय है। उनके पति की ज्ञान-साधना ने स्वयं उनका जीवन भी कंटकाकीर्ण कर दिया था। न केवल उनका बल्कि बच्चे भी सामान्य एवं अनिवार्य सुविधाओं से वंचित थे। समय पर चिकित्सा के अभाव में बाबासाहेब की एक संतान अकाल मृत्यु को प्राप्त हुई थी, जिसका पति-पत्नी दोनों को बड़ा अफसोस हुआ था। परंतु वे दोनों ही कर्तव्य-पथ से रत्ती भर भी विचलित नहीं हुए थे।

बाबासाहेब को अपने अध्ययन के दौरान अस्पृश्यता के दंश तो झेलने ही पड़े थे, पर उन्हें यह दंश तब असहनीय हो गए जब वे विदेश से अपनी शिक्षा ग्रहण कर आए थे। उच्च शिक्षा से प्राप्त वैश्विक प्रसिद्धि भी जातिगत अवमानना का शमन नहीं कर सकी थी। वे जब बड़ौदा नरेश के यहां नौकरी कर रहे थे तो अछूत होने के कारण रातोंरात उनका सामान कमरे के बाहर फेंक दिया गया था। वे एक पेड़ के नीचे बैठकर फूट-फूटकर रो पड़े। उनके दफ्तर में चपरासी भी दूर से उन्हें फाइलें फेंककर दिया करता था। उनकी प्यास भी गैर दलितों की मोहताज थी क्योंकि वे तभी पानी पी सकते थे जब कोई उन्हें पानी दे देता। इसी स्थिति में उन्होंने तय कर लिया था कि किन्हीं भी परिस्थिति में वे दलित समाज को सम्मानजनक स्थान अवश्य ही दिलाएंगे। समाज में अपनी सम्मानजनक उपस्थिति दर्ज करने हेतु उन्होंने कुछ बड़े कदम प्रतीकस्वरूप उठाए, जिनमें प्रमुख हैं- महाड़ के चावदार तालाब का पानी का सत्याग्रह, नासिक में कालाराम मंदिर में दलितों का प्रवेश और मनुस्मृति का दहन। ये उनके सामाजिक जीवन के आरंभ के कार्य हैं और इनसे यह तो सिद्ध होता ही है कि वे अपने संघर्ष को कितनी स्पष्टता के साथ देख रहे थे और किस दिशा की ओर चलने को कृतसंकल्प थे। उनके जीवन का अंतिम महत्वपूर्ण निर्णय बौद्ध धम्म ग्रहण करना है। 'साम, दाम, दण्ड, भेद' जिस संस्कृति का आधार हो वहां कुछ भी संभव हो सकता है। वे बहुत पहले ही घोषणा कर चुके थे जिसे हम 'भीम प्रतिज्ञा' के नाम से जानते हैं 'यह मेरे बस में नहीं था कि मैं हिंदू धर्म में पैदा हुआ पर यह मेरे बस में है कि मैं हिंदू धर्म में मरूंगा

नहीं।' जिस अस्पृश्यता को जाति के कारण वे बचपन से सहते चले आ रहे थे वह वर्ण-भेद हिंदू धर्म का अविभाज्य अंग था और है।

बाबासाहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर के जीवन-दर्शन का निचोड़ स्वतंत्र भारत के संविधान निर्माण एवं सन् उन्नीस सौ छप्पन में बौद्ध धम्म ग्रहण करते हुए धम्म चक्र प्रवर्तन दिवस के अवसर पर ली गई बाईस प्रतिज्ञाओं के द्वारा प्राप्त होता है। इनके माध्यम से वे ईश्वर, आत्मा, पुनर्जन्म, भाग्य को नकारते हुए समता, स्वतंत्रता और बंधुता की आधार-शिला रखते हैं। वे मनुष्य के चरित्र के निर्माण में बौद्ध धम्म की भूमिका को महत्ता के साथ रेखांकित करते हैं। गौतम बुद्ध अपने धम्म में बगैर किसी भेद-भाव के प्रत्येक मनुष्य को स्थान देते थे। इसी बात से डॉ. अम्बेडकर प्रभावित हुए थे। त्रिशरण एवं पंचशील में बौद्ध धम्म का सार निहित है। बुद्ध का अनिवार्य प्रचलित पद 'प्रज्ञा, शील, करुणा' हो या बाबासाहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर का पद "समता, स्वतंत्रता, बंधुता" फिर "बुद्ध शरणम् गच्छामि, धम्म शरणम् गच्छामि और संघम् शरणम् गच्छामि"। उनकी स्थापना थी कि जब तक वैचारिक स्तर पर संतुलन नहीं आ पाएगा तब तक व्यवहार में भी संतुलन नहीं होगा। वैचारिकता का सीधा प्रभाव हमारे कार्यों में सहज दृष्टव्य होता है। और जैसा व्यवहार लेकर हम समाज का चरित्र व्यक्ति के चरित्र से अलग नहीं होता है। यदि समाज से हम समता, बंधुता, निष्पक्षता की अपेक्षा करते हैं तो हमें स्वयं सर्वप्रथम अपने भीतर इन मूल्यों का सकारात्मक विकास प्रदान करना होगा। समाज से जिन मूल्यों की अपेक्षा की जाती है, वे मूल्य कोई और गढ़ कर समाज में रोप नहीं देगा। ये जीवन-मूल्य तो ऐसे पुष्प हैं जो असल जीवन में भी सौरभ की वृद्धि करते हैं। समाज के समस्त उपांगों में अपनी उपस्थिति का लेप लगाकर कोमल भाव-संसार का निर्माण करते हैं। इसलिए बाबासाहेब त्रिशरण के प्रति आग्रहशील हैं।

'बुद्ध शरणं गच्छामि' पद बुद्धि के समक्ष जाने की बात कहता है। बगैर किसी पूर्वग्रह या दुराग्रह के हमें अपने बुद्धि की रास थामनी होगी। संतुलित सोच संतुलित समाज को जन्म देने में सफल होती है। संतुलित सोच संतुलित व्यवहार को जन्म देने में सहायक होती है। अत: द्वितीय पद है 'धम्मं शरणं गच्छामि' धम्म से आशय तथाकथित धर्म से नहीं है। प्रसिद्ध इतिहासकार रोमिला थापर 'धम्म' को बेहद साफ शब्दों में समझाती हैं। धम्म जीवन जीने की पद्धति है इससे इतर कुछ नहीं। गौतम बुद्ध भी उपदेश देते हैं कि जिसका संबंध ईश्वर, आत्मा, भाग्य, पुनर्जन्म आदि हो वह चाहे और कुछ हो सकता है पर धम्म नहीं हो सकता। धम्म का संबंध मनुष्य और समाज के कार्य व्यापार से है जिसमें करणीय और अकरणीय का पूरा ध्यान रखा जाता है। जब मनुष्य अपनी वैचारिकता के आधार पर अपने आचरण को साध लेता है, तब वह समाज में जाने की सामर्थ्य पैदा कर पाता है। धम्म की शरण में जाने के बाद ही वह संघ में जाने के लिए तैयार हो पाता है। इतना ही नहीं, समाज के समक्ष उपस्थित होते हुए भी वे मनुष्य से अपेक्षा करते हैं कि वह पंचशील का पालन करे झूठ न बोले, चोरी न करे, मद्यपान न करे, मांस भक्षण न करे, परस्त्री गमन न करे बौद्ध धर्म में केवल अपने आचरण की शुद्धता पर बल दिया गया है। आचरण की शुद्धता ही लोकतंत्र को मजबूती प्रदान करने वाला तत्व है। इसलिए डॉ. अम्बेडकर संविधान निर्माण के समय बेहद सावधान रहते हुए नागरिक के कर्त्तव्य और अधिकार को पूरी स्पष्टता के साथ प्रस्तुत करते हैं।

संविधान निर्माण के समय उन्होंने इस बात का ध्यान रखा कि देश के प्रत्येक नागरिक को देश के विकास में सीधे अपनी भूमिका निभाने का अवसर प्राप्त हो। सुदूर जंगलों में रहने वाले आदिवासी समुदाय देश के विकास में अपना सकारात्मक एवं सक्रिय योगदान दे सकें।

संविधान निर्माण के समय उन्होंने इस बात का पूरा पूरा ध्यान रखा कि भारत के प्रत्येक नागरिक के अधिकारों की रक्षा होनी चाहिए, किसी भी तरह की गैर-बराबरी या विभाजन का शिकार स्वतंत्र भारत के नागरिक के अधिकारों की रक्षा होनी चाहिए। किसी भी तरह की गैर बराबरी या विभाजन का शिकार स्वतंत्र भारत का नागरिक न हो सके। संविधान निर्माण के समय उन्होंने इस बात का ध्यान रखा कि देश के प्रत्येक नागरिक को देश के विकास में सीधे अपनी भूमिका निभाने का अवसर प्राप्त हो। सुदूर जंगलों में रहने वाले आदिवासी समुदाय देश के विकास में अपना सकारात्मक एवं सक्रिय योगदान दे सकें। यह आदिवासी समुदाय आर्थिक रूप से विपन्न था। समाज में कंधे से कंधा मिलाकर वह अपना सफर आरंभ कर सके, ऐसा सोचकर उन्हें आर्थिक समानता के पर्याप्त अवसर उपलब्ध कराने के लिए संविधान में आरक्षण की व्यवस्था की,गई। इसी तरह दलितों को सामाजिक सम्मान दिलाने के लिए मताधिकार की व्यवस्था उस समय की जबकि काफी सारे देशों में नहीं थी। वे अपने सोच में कितने स्पष्ट थे, इसका अंदाज इस तथ्य से लगाया जा सकता

है कि उन्होंने ग्राम पंचायतों को स्वीकार नहीं किया। भारत की सामाजिक व्यवस्था में सत्ता का संघर्ष किन केन्द्रों से संचालित होता है, वे बखूबी जानते थे। वे ग्राम व्यवस्था जकड़े हुई थी। जब तक इन जगहों पर बसे लोगों को उनके 'कम्फर्ट जोन' से बाहर नहीं निकाला जाएगा, तब तक परिवर्तन संभव नहीं है। इसका ताजा उदाहरण हम खाप पंचायतों के रूप में देख सकते हैं। खाप पंचायतें जिस तरह से एक स्त्री पर तमाम तरह के अमानवीय बंधन लादने का प्रयास करती हैं और स्वयं स्त्रियों को भी पितृसत्ता के अनुकूलन का शिकार बनाते हुए अपना ही अनादर करने को बाध्य कर देती हैं।

इसलिए बाबासाहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर के लिए 22 सितम्बर 1951 का दिन एक तरह से उनके सोच को पलीता लगाने वाले दिन की तरह लगा, पराजय का उन्हें अनुभव हुआ जब हिंदू कोड बिल का प्रस्ताव पारित न हो सका। इसे बनाने में बाबासाहेब ने रात दिन एक कर दिया था। जब यह बन रहा था तो लोगों ने अफवाह उड़ाई कि इस कोड बिल में भाई बहन की शादी करने का प्रावधान है। देश के कुछ बड़े नेताओं, जो स्वयं को बहुत प्रगतिशील मानते थे, ने तो इसका विरोध करते हुए अपने-अपने राज्यों में विरोधी जुलूस तक निकाले थें किंतु बाबासाहेब विचलित नहीं हुए। वे इस बिल के विरोधी सब लोगों से बातचीत करने को तैयार थे। उन्होंने इस बिल को हिन्दी में अनुवाद भी करवाया था ताकि आम जनता को कोई भ्रम न हो। इतना सब करने के बाद भी वह बिल पास न हो सका। इससे उन्हें बहुत धक्का लगा। हिंदू धर्म का पालन करने वाली स्त्री जिस अवमानना का शिकार थी, उससे मुक्ति दिलाने में बाबासाहेब का बहुत बड़ा योगदान है। वे श्रम की महत्ता जानते थे। साथ ही साथ एक मां के उत्तरदायित्व से भी परिचित थे। इसलिए उन्होंने कामगार स्त्री का सम्मान करते हुए प्रसूति अवकाश की व्यवस्था की। वे यह जानते थे कि परिवार की केन्द्रीय धुरी स्त्री है। यदि स्त्री अशिक्षित रह जाएगी तो सारा परिवार ही अशिक्षित रह जाएगा, उसे चेतना प्राप्त नहीं होगी। इसलिए वे कहते थे कि यदि परिवार की आर्थिक स्थिति इतनी खराब है कि किसी एक बच्चे को शिक्षा दी जा सके तो लड़के के बजाय लड़की को शिक्षित किया जाना चाहिए। एक शिक्षित स्त्री अपने पूरे परिवार को शिक्षित कर सकती है, जबकि एक पुरुष नहीं। इसलिए स्त्री का सम्मान उनके लिए एक महत्वपूर्ण नीति की तरह था। उन्होंने संविधान निर्माण करते हुए प्रत्येक भारतीय की स्वतंत्रता का ध्यान रखा था।

डॉ. अम्बेडकर का मानना था कि यदि परिवार की आर्थिक स्थिति इतनी खराब है कि किसी एक बच्चे को शिक्षा दी जा सकती तो लड़के के बजाय लड़की को शिक्षित किया जाना चाहिए।

मौलिक अधिकारों की व्यवस्था करते हुए लोक मंगल का सपना उन्होंने देखा था। उनके द्वारा राज्य की लोककल्याणकारी भूमिका निर्धारित की गई थी।

भारत के शक्तिमान लोगों से उन्हें इस बात का अंदेशा था कि स्वतंत्र भारत के संविधान में जिस लोकतंत्र की स्थापना की जा रही है, उसका नाजायज इस्तेमाल किया जा सकता है। लोकतंत्र को छद्म निरंकुश राजतंत्र में परिवर्तित होने में देर नहीं लगती क्योंकि राजशाही और सामंतशाही देश की राजनीति का मूल चरित्र था। एकाएक प्राप्त लोकतंत्र के लिए भारतीय जनमानस परिपक्व नहीं था। इसलिए देश को संविधान सौंपते हुए उन्होंने स्पष्ट कहा था कि उन्होंने संविधान में राजनीतिक लोकतंत्र की स्थापना की है, पर यह सफल तभी होगा जब यह सामाजिक लोकतंत्र में परिवर्तित होगा। प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ नेल्सन मंडेला ने भी भारतीय संविधान को विश्व का श्रेष्ठ संविधान बताया है। बगैर किसी भेद-भाव के मनुष्य को अपनी आजीविका, किसी भी व्यवसाय के साथ संचालित करने की अनुमति भारत का संविधान देता है। भारत के पूर्व राष्ट्रपति दिवंगत के.आर. नारायणन ने भी कहा था कि संविधान का अच्छा या बुरा होना चलाने वाले की नीयत से भी निर्धारित होता है। अच्छे से अच्छा संविधान भी बुरा हो जाता है जब हमारी नीयत खराब होती है, इसी तरह से बुरा संविधान भी अच्छा हो जाता है जब हमारी नीयत अच्छी होती है।

स्वतंत्रता का सातवां दशक चल रहा है। हम देख रहे हैं कि तमाम विसंगतियों के बावजूद हमारा लोकतंत्र धीरे-धीरे ही सही, पर बहुत मजबूत और दृढ़ कदमों के साथ निरंतर प्रगति के प्रशस्त पथ का पथिक है। हमारी जन-भागीदारी निरंतर विस्तार पाती जा रही है। बाबासाहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर के सपनों का भारत निर्मित होता जा रहा है। सामाजिक परिवर्तन की गति सदा ही सुस्त रही है। सामाजिक परिवर्तन का अर्थ है समाज के मनुष्य की मानसिकता का परिवर्तन। मानसिकता का परिवर्तन आसान कार्य नहीं है। फिर भी अपने गंभीर प्रयासों से डॉ. अम्बेडकर ने इस दुर्लभ ही क्यों अलभ्य कार्य को कर दिखाया है। वे कहते थे कि 'बड़ी मुश्किल से मैं यह कारवां यहां तक ले आया हूं। यदि इसे आगे न बढ़ा सको तो कोई बात नहीं, पर इसे पीछे मत जाने देना'। सचमुच ही कितनी पीड़ा और अपमान-बोध के साथ उन्होंने हमें सम्मान दिलाया है। उनके इस कारवां को सतत आगे बढ़ाते रहना हम समस्त भारतवासियों की जिम्मेदारी है। □

(लेखक जामिया मिल्लिया विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग में सहायक प्राध्यापक हैं।)

डॉ. बी. आर. अम्बेडकर की राष्ट्रीय स्वास्थ्य के विकास में भूमिका

■ डॉ. जुगल किशोर

परिचय

द्वितीय विश्व युद्ध 1945 में समाप्त हो गया था और दुनिया को एहसास हो गया था कि सुरक्षा के लिए अंतरराष्ट्रीय सहयोग की जरूरत है। 1946 में विश्व स्वास्थ्य संगठन की नींव रखी गई जिसने स्वास्थ्य की परिभाषा दी–''वह पूर्ण अवस्था जिसमें एक व्यक्ति न केवल बीमारी और दुर्बलता से मुक्त हो बल्कि वह शारीरिक, मानसिक और सामाजिक रूप से अच्छी तरह से स्वस्थ महसूस करता है।'' आज हम जानते हैं कि स्वास्थ्य पानी और स्वच्छता, शिक्षा, अर्थव्यवस्था, न्याय, राजनीति, कृषि पर्यावरण संरक्षण, सामाजिक कल्याण, अंतर्राष्ट्रीय संबंध और शांति आदि विभिन्न क्षेत्रों पर निर्भर करता है। डॉ. बी आर अम्बेडकर इन सभी के बारे में जानते थे और इसलिए भारत की स्वतंत्रता के बाद जब उन्हें भारत का संविधान बनाने के लिए कहा गया, उनका ध्यान सामाजिक और कानूनी इंजीनियरिंग के माध्यम से स्वास्थ्य और विकास को सुरक्षित करने की और था। उन्होंने माना कि सभी परिस्थितियों में राज्य के हर नागरिक के लिए प्रदान किया जाना चाहिए। उन्होंने विभिन्न लेखों के माध्यम से यह सुनिश्चित किया कि हर व्यक्ति शिक्षा और स्वास्थ्य के समानता और न्याय के अपने अधिकारों का आनंद ले सके। सरकार द्वारा तैयार भविष्य की स्वास्थ्य की नीतियों में उनका योगदान बहुत है क्योंकि वह सार्वजनिक स्वास्थ्य के विभिन्न निर्धारकों के बारे में जानते थे, इसलिए उसके इन कारकों को नष्ट करने पर ध्यान केंद्रित किया गया । ब्रिटिश काल के दौरान, अगर हम भारत में गरीब आबादी और शिक्षा, सामाजिक स्थिति, स्वच्छता की स्थिति, धर्म, और सांस्कृतिक प्रथाओं के साथ अपने सहयोग के स्वास्थ्य की स्थिति पर ध्यान देते हैं तो एहसास होगा कि भारतीय संविधान के प्रावधान उन सभी कारकों को दूर करने के लिए उपयुक्त है जो सार्वजनिक स्वास्थ्य में बाधा डालते हैं।

ब्रिटिश भारत में स्वास्थ्य का इतिहास

आजादी के पूर्व भारतीय लोगों के स्वास्थ्य और कल्याण की स्थिति दयनीय थी। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद ब्रिटिश सरकार ने महसूस किया कि उच्च मृत्यु दर देश के खराब स्वास्थ्य का कारण था और विस्तृत अध्ययन की जरूरत थी । इस काम के लिए सर जोसेफ भोर को नियुक्त किया गया और 1946 में उन्होंने विस्तृत रिपोर्ट प्रस्तुत की। रिपोर्ट में संकेत दिया कि हैजा, चेचक और प्लेग 1932-41 की अवधि के दौरान कुल मृत्यु दर में 40 प्रतिशत योगदान करने के लिए जिम्मेदार थे । सर भोर समिति के निष्कर्षो के अनुसार बच्चों और महिलाओं के स्वास्थ्य की स्थिति बदतर थी। द्वितीय विश्व युद्ध से पहले भारत में कुल मौतों में से 48 प्रतिशत 10 वर्ष की आयु के नीचे थी, जबकि इंग्लैंड और वेल्स में यह केवल 10 फीसदी थी। इसके अलावा, मातृ मृत्यु दर भारत में 20 प्रति 1000 प्रसव जबकि इंग्लैंड में 3 प्रति 1000 प्रसव थी। रिपोर्ट में मृत्यु दर, शिशु मृत्यु दर और जीवन प्रत्याशा दर ब्रिटिश भारत और अन्य विकसित देशों के साथ तुलना की गई और पता चला कि वे कई गुना अधिक थे जो निम्न तालिका में दर्शाए गए हैं।

खराब स्वास्थ्य की स्थितियों के कारण :

1. खराब स्वच्छता की स्थिति : हैजा टाइफाइड बुखार और पेचिश जैसे रोगों के लिए जिम्मेदार थी। भारत में शहरों की कुल संख्या का केवल 6 प्रतिशत में पोर्टेबल पानी की आपूर्ति थी। ग्रामीण क्षेत्रों और उभरते शहरी क्षेत्रों में पानी की आपूर्ति अल्पविकसित थी । कुल जनसंख्या का 3

तालिकाः 1 अन्य देशों के साथ भारतीय मृत्यु दर और जीवन प्रत्याशा की तुलना

देश	मृत्यु दर	शिशु मृत्यु दर	जीवन प्रत्याशा दर (आयु)	
			नर	मादा
न्यूजीलैंड	9.1	31	65.04	67.88 (1931)
ऑस्ट्रेलिया	9.4	38	63.48	67.14 (1932-34)
दक्षिण अफ्रीका	10.1	37	57.78	61.48 (1925-27)
कनाडा	10.2	76	59.33	61.59 (1924-31)
इंग्लैंड एंड वेल्स	11.4	58	58.74	62.88 (1930-32)
इटली	14.2	109	53.76	56.0 (1928-32)
फ्रांस	15.0	65	54.30	59.02 (1928-34)
जापान	17.0	106	44.82	46.54 (1926-30)
संयुक्त राज्य अमेरिका	9.6	54	53.33	56.09 (1929-31)
जर्मनी	11.7	64	59.86	62.75 (1932-34)
ब्रिटिश भारत	22.4	162	26.91	26.59 (1921-30)

सूत्रः स्वास्थ्य सर्वेक्षण और विकास समिति (भोर समिति) की रिपोर्ट, 1946, भारत सरकार

फीसदी में उचित सीवरेज प्रणाली थी। अंग्रेजों के औपनिवेशिक शासन के तहत सार्वजनिक स्वास्थ्य के विकास में सुधारों की पहल के बावजूद खराब थी।

2. कुपोषण : पोषण व्यक्ति और समुदाय की उत्पादक क्षमता को सीधा प्रभावित करता है। आजादी के पूर्व 75 प्रतिशत से अधिक शारीरिक विकलांगता, पौष्टिक, पर्याप्त, गुणात्मक, मात्रात्मक भोजन के साथ ठीक किया जा सकता था। लोग भोजन नहीं खरीद सकते थे। औसत आय के मामले में यह शायद ही संभव हो सकता था कि 30 फीसदी से अधिक आबादी के पास पर्याप्त भोजन की मात्रा थी।

3. सामान्य और स्वास्थ्य शिक्षा का अभाव : स्वास्थ्य शिक्षा की कमी, देश में शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में खराब व्यक्तिगत और पर्यावरण स्वच्छता के मानक थे।

4. चिकित्सा और निवारक स्वास्थ्य संगठन : मौजूदा स्वास्थ्य सेवाओं की अपर्याप्तता लोगों की जरूरतों को पूरा करने में अक्षम थी। 47,400 डॉक्टर देश में उपलब्ध थे जिसमें से केवल 13,000 सरकार और अन्य एजेंसियों द्वारा संचालित संस्थानों में थे। 75 प्रतिशत से अधिक शहरी क्षेत्रों में थे और ग्रामीण क्षेत्रों में वितरण बहुत कम था। औसतन वे प्रति रोगी के लिए 45 सेकेंड समर्पित थे। चिकित्सा और नर्सिंग सहायता की गुणवत्ता संतोषजनक नहीं थी। 1000 भारतीय आबादी के लिए बेड, डॉक्टर और नर्स की उपलब्धता संयुक्त राज्य अमेरिका और इंग्लैंड एंड वेल्स की तुलना में कई गुना कम थी।

5. भारत में आम बीमारियों की व्याप्तता : मलेरिया, प्लेग, कुष्ठ रोग, निमोनिया, चेचक, अंधापन, तपेदिक, यौन रोग, हैजा, आंत्रशोथ, हुकवर्म आदि जैसे रोग विशेष रूप से गरीब और दलित लोगों में थे ।

6. सामाजिक क्षेत्रीय असमानता : सामाजिक-आर्थिक असमानता स्वास्थ्य सुविधाओं के उपयोग, व्यक्तिगत योगदान, जोखिम रोगों के निदान और जागरूकता कार्यक्रम को प्रभावित करते हैं। ये सब देश में प्रमुख मुद्दे थे। स्वास्थ्य में जाति, वर्ग और लिंग आदि असमानता वर्षों से कायम थी । यह देखा गया है कि एक ही देश में स्वास्थ्य के मामले में लोग दो अलग दुनिया, बीमारी के बोझ, कुपोषण की स्थिति और उपचार के बोझ में रहते थे। गरीब लोग, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति, रोगों और कुपोषण का कई गुना ज्यादा बोझ सहन कर रहे थे और वे समाज के अन्य समूहों की तुलना में सार्वजनिक सुविधाओं पर निर्भर थे। ब्रिटिश सरकार समाज के इन समूहों के स्वास्थ्य में सुधार के लिए उत्सुक नहीं थी।

7. लिंग : महिला स्वास्थ्य भी ब्रिटिश भारत में खराब थी। पर्याप्त स्वास्थ्य देखभाल, पोषण नहीं था और हिंसा के साथ भेदभाव किया गया था। यहां तक कि महिलाओं द्वारा स्वास्थ्य सेवाओं के लिए उपयोग करने के लिए विशेष रूप से अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, अन्य पिछड़े समुदायों, कमजोर वर्गों और अल्पसंख्यकों और ग्रामीण क्षेत्रों में अनौपचारिक और असंगठित क्षेत्र की कामकाजी महिलाओं में कमी थी। वे काफी हद तक सामाजिक रूप से बाहर थीं।

इसलिए भोर समिति ने रोग की रोकथाम और उपचार के लिए आवश्यक सुविधाओं के साथ सकारात्मक स्वास्थ्य को बढ़ावा देने के लिए सभी नागरिकों को अपनी क्षमता के बावजूद एक संगठित स्वास्थ्य सेवा के प्रावधान की सिफारिश की।

डॉ. बी. आर. अम्बेडकर के स्वास्थ्य के क्षेत्र में योगदान

विभिन्न लेखों, और संसद में बहस के माध्यम से, डॉ. बी.आर. अम्बेडकर उस समय के नेताओं को समझाने में सक्षम थे कि स्वास्थ्य, समानता और देश में शांति और विकास के लिए महत्वपूर्ण है । संविधान द्वारा प्रदान सात मौलिक अधिकार हैं-मूल-समानता का अधिकार, स्वतंत्रता का अधिकार, शोषण के खिलाफ अधिकार, धर्म की स्वतंत्रता, सांस्कृतिक और शैक्षिक अधिकारों, और संवैधानिक उपचार के लिए अधिकार। सार्वजनिक स्वास्थ्य के महत्व को समझने के बाद, उन्होंने सरकार पर संविधान के माध्यम से सभी के लिए बिना किसी भेदभाव के सुरक्षा और स्वास्थ्य के अधिकार की पूर्ति सुनिश्चित करने के लिए, लेख 14, 15 के तहत एक मौलिक अधिकार दिया और लेख 21 में (जीवन के लिए अधिकार समानता और गैर भेदभाव), अनुच्छेद 17 (अस्पृश्यता का उन्मूलन) के तहत कुछ प्रासंगिक मौलिक अधिकारों के साथ-साथ अनुच्छेद 23 (मानव तस्करी और रोजगार के लिए मजबूर करना निषेध) और अनुच्छेद 24 (कारखानों में बच्चों के रोजगार की निषेध, आदि), और राज्य का आग्रह, राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धांतों के तहत की असमानता को खत्म करने, सुविधाओं और अवसरों (अनुच्छेद 38), महत्वपूर्ण श्रमिकों, पुरुषों, महिलाओं के स्वास्थ्य के रूप में सार्वजनिक स्वास्थ्य की स्थिति के लिए उपलब्ध कराने के लिए प्रयास करने के लिए और बच्चों (अनुच्छेद 39) और मातृत्व राहत (अनुच्छेद 42) और मानवीय स्थितियों, शिक्षा, काम और कुछ मामलों में सार्वजनिक सहायता (अनुच्छेद 41) के सही पोषण के स्तर और जीवन स्तर तथा जनता के सुधार, स्वास्थ्य (अनुच्छेद 47), रक्षा और पर्यावरण (अनुच्छेद 48 ए) में सुधार, और कुछ सहवर्ती प्रत्येक नागरिक, महिलाओं की गरिमा के लिए अपमानजनक प्रथाओं (संधि आदि) रद्द करना और रक्षा के लिए और प्राकृतिक पर्यावरण में सुधार (अनुच्छेद 51) आदि प्रावधान किए गए थे।

संविधान के विभिन्न खंड के माध्यम से डॉ. बी. आर. अम्बेडकर भोर समिति की रिपोर्ट में वर्णित सभी प्रमुख समस्याओं का समाधान करने में सक्षम थे। समानता और न्याय के लिए उनकी वकालत व्यक्ति की मानसिक और सामाजिक स्वास्थ्य के लिए मौलिक हैं। डॉ. बी. आर. अम्बेडकर को मानव के सामाजिक और आर्थिक उत्पादक जीवन के लिए पूरी तरह से स्वास्थ्य प्राप्त करने के लिए और विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा वर्णित स्वास्थ्य समस्याओं को हल करने में एक महान दूरदर्शी कहा जा सकता है। □

(लेखक मौलाना आजाद मेडिकल कॉलेज, नई दिल्ली में वरिष्ठ चिकित्सक व प्राध्यापक हैं।)

इतिहास

जातीय वर्चस्व एवं लोकतंत्र

▪ डॉ. राजकुमार

मानवीय गरिमा सम्मान एवं नैतिक विकास के प्रखर योद्धा के रूप में बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर ने भारत में जातीय व्यवस्था को ध्वस्त करने एवं लोकतन्त्र को स्थापित करने में अद्वितीय योगदान दिया है। चार दशकों (1916-1956) के अपने सार्वजनिक जीवन में बाबासाहेब ने समतामूलक समाज एवं सुदृढ राष्ट्र के निर्माण के आन्दोलन में अपनी सम्पूर्ण सामर्थ्य को केन्द्रित कर नेतृत्व प्रदान किया एवं आन्दोलन की इतनी शक्तिशाली बुनियाद तैयार कर दी कि आने वाली पीढ़ियां सुगमता के साथ उस पर यथोचित निर्माण कर सकें।

अपने संघर्ष के दौरान बाबासाहेब ने गुलाम जातियों की मुक्ति, उनका सशक्तिकरण एवं प्रबुद्धिकरण की सफल रणनीति अपनाई एवं समाज को आन्दोलन के सहारे अपने अत्याचार अपमान एवं शोषण से मुक्ति के मार्ग पर चलने के लिए तैयार किया इस संघर्ष के शिखर पर रहते हुए बाबासाहेब ने तीन आयामों को रेखांकित किया। भारतीय समाज एवं राष्ट्र की प्रमुख समस्या क्या है? इस समस्या का सम्यक् समाधान क्या है? इसके समाधान की जिम्मेदारी किसकी है, एवं भविष्य का समाज एवं राष्ट्र कैसा होगा उसके आधारभूत तत्त्व क्या होंगे?

जाति व्यवस्था समाज का कोढ़ है जिसने उसे खोखला कर दिया है, उसको अपंग बना दिया है, उसके विकास की गति पूर्णतः, अवरूद्ध कर दिया है। जाति ने न सिर्फ समाज को विकास से वंचित किया है बल्कि समाज को पतन की गर्त में ढ़केल दिया है सामाजिक संरचना के इस निष्कृष्टतम रूप ने सामाजिकता को छिन्न-भिन्न करके आपसी सौहार्द एवं नैतिकता को समाप्त कर दिया है। जाति व्यवस्था स्वस्थ्य समाज एवं राष्ट्र के निर्माण में बाधा बनी हुई है। सभी जातिगत समूह एक दूसरे से अलग एवं विरूद्ध युद्ध बंदी में लिप्त है, जिसने सामाजिक अस्थिरता, असुरक्षा को स्थायी बना दिया हैं। जाति ने समाज का नैतिक पतन भी किया है। जातिगत खाँचें मनुष्य को आपसी सहयोग एवं उसके नैसर्गिक विकास से दूर ले जाते हैं, ये बेडियाँ उसकी स्वतन्त्रता को हजारों साल से कुन्द कर रही हैं। व्यक्ति एवं समाज भयंकर रूप से अलगाव एवं अपवर्जन का। शिकार हुआ है, न व्यक्ति अपने व्यक्तित्त्व का विकास कर पा रहा है और न समाज अपनी सामाजिकता का जाति के जहर से समाज मृतप्रायः हुआ है विकृत और विखण्डित हुआ है।

जाति व्यवस्था का विध्वंस ही नये समाज निर्माण की बुनियाद तैयार कर सकता है। सामाजिक सम्बंधों एवं व्यवहार के अभाव में जाति अभेदयकारी स्वरूप ग्रहण कर चुकी है। हर जाति एक दूसरे के खिलाफ युद्ध जैसी स्थिति में लामबंद है, कुछ विजित जातियों ने अपने वर्चस्व को धार्मिकता का जामा पहनाकर बहुसंख्यक पराजित समाज को उनके मानवीय अधिकारों से वंचित कर अपनी शक्ति एवं वर्चस्व को अपना दैवीय अधिकार बना लिया है। गुलाम समाज को हजारों उपसमूहों मे विखण्डित कर सभी रणनीतिक (सत्ता, शस्त्र, सम्मान एवं शिक्षा) संसाधनों से वंचित कर अपनी गुलामी को स्वीकार करने के लिए मजबूर कर दिया है। कालान्तर में इन संसाधनों के आभाव में गुलाम जातियां संघर्ष विमुख हो गई और अपनी गुलामी को शारीरिक एवं मानसिक रूप से स्वीकार करने लगी, हालांकि इन गुलाम जातियों मे सबसे साहसी एवं संघर्षशील समूह ने अपने को जाति व्यवस्था का गुलाम नहीं बनने दिया। तथा अपनी चली आ रही मानवीय एवं समतामूलक व्यवस्था जो कि विवेक और मैत्री पर आधारित थी उसे ही मानते रहे तमाम कठिनाइयों एवं अत्याचारों को सहते हुए भी इन अछूत समूहों ने जातिगत सांस्कृतिक साम्राज्यवाद को अपने तमाम षडयन्त्रों हथकंडों एवं हथियारों के बावजूद बौद्धिक सभ्यता को छू नहीं पाई। इन अनछुए क्रान्तिवीरों ने अमानवीय परिस्थितियों में जीवन यापन-करके भी हजारों साल तक ब्राह्मणवादी आंतक का अदम्य साहस के साथ डटकर मुकाबला किया तथा अपने सम्मान, स्वाभिमान एवं अस्तित्व को बनाए रखा।

इन अछूत समूहों को अपनी वीरता एवं पराक्रम के दुष्परिणाम भुगतने पड़े, उन्हें सभी मानवीय अधिकारों सें वंचित कर दिया गया, युद्धबंदी के रूप में खाना वस्त्र एवं आवास छीन लिए गए। उन्हें कन्दमूल पशु पक्षियों तथा बचे खुचे भोजन को खाकर जीवन यापन करना पड़ा। प्रताड़ना संघर्ष तथा जिजीविषा का यह अनूठा उदाहरण है, इन्होंने दूसरों का मैला ढोया, मरे हुए जानवरों को खाया, लेकिन अपने स्वाभिमान से समझौता नहीं किया। अछूतों की इस महान परम्परा के बाद भी इन्हें अत्याधिक अत्याचार झेलना पड़ा, आपस में एक दूसरे से सवांद न कर सकें, मुक्ति का सामूहिक प्रयास न कर सके इसलिए युद्धबंदियों की भांति इन्हें अलग-अलग जातिगत जेल कोठरियों में डाल दिया। कालान्तर में गुलाम जातियों की सभ्यता की

पहचानों समस्याओं संरचनाओं तथा सगंठनों को नष्ट कर दिया। उनकी शिक्षण संस्थाओं, संचार माध्यमों और नेतृत्त्व, को ध्वस्त कर दिया। हजारों साल के इस दमनकारी चक्र ने कुछ गुलाम जातियों में भी पहचान का संकट खड़ा कर दिया, कुछ ने उनकी गुलामी को स्वीकार कर लिया, कुछ समूहों ने जगंल की शरण लेकर अपने को बचाया। आज इन समूहों का बड़ा हिस्सा जगलों में आदिवासियों के रूप में जीवन बसर कर रहा है इस समूह ने अपनी मानवीय मूल्यों को अक्षुण रखते हुए जातिगत प्रदूषण से अछुता रखा है।

सम्मान सत्ता एवं समृद्धिहीन गुलाम जातियों ने अपनी अस्मिता को बनाए रखा लेकिन एक बहुत बड़ा वर्ग लम्बे समय तक संघर्ष को जारी न रख सका और जाति व्यवस्था के समक्ष समर्पण कर दिया यह समूह जातीय संस्कृति का गुलाम होकर हीनतम छूद्र वर्ग का सदस्य बन गया, बाद में यह छूद्र ही शूद्र कहलाए। इनको हजारो पेशेगत वंशानुगत क्रमिक समूहों में बाँट दिया गया। फल वाला, फूल वाला, दूध वाला, पानीवाला, तेलवाला, लोहेवाला कपड़ेवाला और न जाने क्या-क्या सभी पेशों को जन्मजात बनाकर एक वशांनुगत जाति के रूप में स्थापित कर दिया जिन्होंने अपने को चौथे दर्जे का मानकर गुलामी को स्वीकार कर लिया वे जाति व्यवस्था का हिस्सा तथा उसका शिकार हुए। जिन्होंने अपनी सभ्यता को नहीं छोड़ा, जाति को स्वीकार नहीं किया जातीय संस्कारों से अनछुए रहे, जातीय व्यवस्था से बाहर रहे अछूतों के रूप में अपनी गरिमा को बनाए रखा परास्त होने के बाद संसाधनहीन हो जाने पर लम्बे समय तक युद्धबंदी के रूप में गुलाम तथा अछूत समूहों को घोर आभावों मे रहना पड़ा जिस समूह ने जाति के विरूद्ध विद्रोह किया उसे अकेला करके आन्दोलन को कुचल दिया जातिवादियों के सेनापतियों को कालान्तर में अपने हथियारों के साथ देवताओं के रूप में स्थापित कर दिया गया। इनके आतंक अत्याचार के सहारे गुलामी को कर्त्तव्य में रूपान्तरित करने का समग्र आन्दोलन शुरू किया जिसके परिणामस्वरूप शूद्रों का बहुत बड़ा वर्ग ब्राह्मणों की गुलामी को अपना कर्त्तव्य मानने लगा, यह जातिवादियों की नैतिक विजय एवं गुलाम जातियों की नैतिक पराजय थी, वे अपनी गुलामी को ही अपनी नियति समझाने लगे, तथा वे संघर्ष का रास्ता छोड़ चुके थे। अछूत वर्ग तमाम वंचनाओं के बावजूद उद्वेलित रहा अपने अस्तित्व को बचाए रखा और का संघर्ष जारी रखा।

अपनी विजय को चिरस्थायी बनाने के लिए तथा गुलामों की पराजय को स्थायी बनाने के लिए जातिवादियों ने अद्‌भुत, अकल्पनीय रणनीतियों का सहारा लिया। जाति की उत्पत्ति इस वर्चस्व को बनाए रखने के साधन के रूप मे विकसित की गई। जाति उस षड्यन्त्र (साम, दाम, दण्ड, भेद, छल, कपट) छः यन्त्रों का सामूहिक सम्बोधन है जिसके द्वारा समाज के बड़े हिस्सें को स्थाई रूप से अपंग बनाने की साजिश रची गई। समाज विच्छेदन का यह दुस्साहसी प्रयास था जिसमें समाज को सात हजार समूहों में बाँट दिया। जाति विलक्षणता यही समाप्त नहीं होती, सभी को सोपानीय क्रम में एक दूसरे के ऊपर नीचे बैठा दिया गया कोई भी जाति किसी दसरे के बराबर नहीं है सभी गुलाम है लेकिन सभी गुलाम समान नहीं है कोई भी गुलामी का बराबर शिकार नहीं है ऊपर वाला गुलाम नीचे वाले गुलाम को सामाजिक स्तर पर अपने से छोटा समझता है और इस तरह अपने अहम को सन्तुष्ट करता है कि उससे भी छोटा कोई और है और वह भी किसी से बड़ा है यह व्यवस्था गुलामों की एकता को छिन्न-भिन्न कर देती है गुलाम स्वयं गुलामी का पहरेदार बन जाता है। वह अपनी मुक्ति तो चाहता है लेकिन अपने से नीचे वाले को गुलाम बनाए रखना चाहता है सिर्फ सर्वोच्य स्थान पर रहने वाला ही स्वतन्त्र है बाकी सब उसके गुलाम हैं लेकिन गुलामों मे किसी प्रकार की एकरूपता नहीं है इसलिए वो अपनी गुलामी को दूर करने का सामूहिक प्रयास नहीं कर पाते तथा सतत् जाति के गुलाम बने रहते हैं जिन समूहों ने इतिहास में मुक्ति का प्रयास किया व्यवस्था संचालक ने उसे प्रलोभन देकर जातिवाद का और भी बड़ा पहरेदार बना दिया कुछ शूद्र जातियों द्वारा ब्राह्मणवाद का लठैत बन जाने की यही त्रसदी है। इन्होंने अपने समाज से गद्दारी करके अपने सम्मान एवं स्वाभिमान की कीमत पर विरोधियों की व्यवस्था का औजार बनना स्वीकार कर लिया। देश के विभिन्न हिस्सों में गुलाम जातियों पर अत्याचार इन्हीं भ्रमित जातियों के द्वारा किया जा रहा है।

दूसरी बड़ी चाल जतिवादियों ने जाति को वशांनुगत बनाने के लिए चली। हजारों उपसमूहों में विभक्त पराजित समाज को वशानुगत पेशों में परिवर्तित किया और व्यवस्था बनाई कि कोई भी पेशागत समूह एक दूसरे से सामाजिक सम्बन्ध नहीं रखेगा, रोटी बेटी का सम्बन्ध नहीं रखेगा इसके विपरीत एक दूसरे से द्वेष एवं वैमनस्य का भाव रखेंगे तथा दुश्मन की तरह व्यवहार करेंगे। समाज की एकता को तोड़ने के लिए यह कुत्सित प्रयास था। आगे चलकर यही जाति व्यवस्था को बनाये रखने का मूलाधार बनी। जिन समूहों ने इनका विरोध किया उनको निर्ममता से कुचल दिया गया उन पर शारीरिक, मानसिक एवं राजनैतिक अत्याचार किये गये। जातीय वर्चस्व को और पुख्ता करने के लिए मनु धर्म का पुरजोर इस्तेमाल किया गया जिसके षड्यन्त्रकारी ग्रंथों को धार्मिक ग्रन्थों के रूप में इस्तेमाल किया गया 'मनुस्मृति' इसी का एक उदाहरण है। जाति को मान्यता एवं स्थायित्त्व प्रदान करने के लिए इसी प्रकार के अनेकों ग्रन्थों की रचना की गई जिसने जातियों के मस्तिष्क

को गुलाम बनाने के लिए इन किवंदन्ती आधारित ग्रन्थों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।, भाग्य, भगवान, आत्मा, परमात्मा, स्वर्ग, नरक पाप, पुण्य पुर्नजन्म आदि न जाने कितने जाल बुने गये जिनमें गुलामों को मानसिक रूप से जकड़ दिया। यही एक कारण था। जिसकी वजह से गुलाम जातियों को इन ग्रन्थों से दूर रखा गया अगर वो इनका अध्ययन करते तो षडयन्त्र का पर्दाफाश करने मे सफल हो सकते थे।

राज्य को भी जातीय व्यवस्था को बनाए रखने के यन्त्र के रूप में इस्तेमाल किया गया। राज्य का उद्देश्य एवं औचित्य ही जाति व्यवस्था को बनाए रखना था प्रत्येक राजा का कर्त्तव्य था कि वह जातिगत आचरण तथा गुलामी को बनाए रखे यदि कोई व्यक्ति अपने जातिगत धर्म से विचलित होता है अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करता, अपनी गुलामी से मुक्त होने की कोशिश करता है। ससांधनों की चाह रखता है सत्ता सम्पत्ति एवं सम्मान की राह पर चलने की कोशिश करता हैं शिक्षा प्राप्त करने का अपराध करता है तो राजा उसे उसके अपराध के अनुसार दण्ड दे, तथा जातीय गुलामी के सन्तुलन को कायम रखे, यदि राजा शूद्र समाज का भी हो तो उसे जातीय गुलामी को बनाए रखना पड़ेगा। शिवाजी का उदाहरण इसकी एक बानगी मात्र है। जिसने ब्राह्मण के वजन के बराबर सोना देकर, उसके उल्टे पैर की सबसे छोटी उँगली से अपने माथे पर तिलक लगवाकर वर्ण-व्यवस्था को बनाये रखने का वचन दिया। गुलाम के द्वारा गुलामी को गर्व से स्वीकार एवं बनाये रखने का यह अद्वितीय उदाहरण है।

इस प्रकार सामाजिक हिंसा धर्मांधता एवं राजनैतिक शक्ति के द्वारा ब्राह्मणी वर्चस्व को बनाए रखने का षडयन्त्रकारी इन्तजाम किया गया इस व्यवस्था ने दुनिया के घोरतम अन्यायकारी अत्याचारी अपमानजनक व्यवस्था को जन्म दिया जो हजारों साल तक अनवरत् चलती रही। जाति अपने सभी आयामों के साथ भारतीय समाज की वीभत्स सच्चाई बनी हुई है समाज, धर्म राज्य इसकी संस्थाए, संस्थान एवं विचारधाराएँ जाति वर्चस्व को बनाए रखने के माध्यम बन गए हैं। सुधारों आन्दोलनों एवं संघर्षों को जाति हजारों साल से आगोश में समाती रही है जो आवाजें जाति के खिलाफ उठीं अन्ततः इसके सामने नतमस्तक हो गईं और जातिवादी अपने सर्वोच्च स्थान को बनाए रखने में सफल हुए इसलिए बाबासाहेब ने कहा था कि जाती वह चट्टान है जो हर सुधार के रास्ते में रोड़ा डालती है। सभी राजनैतिक सामाजिक, आर्थिक आन्दोलनों को जातिवाद का दंश मार देता है बिना जाति विध्वंस से किसी भी परिवर्तन एवं सुधार की उम्मीद रेत के महल बनाने के समान है। आधुनिक समय में जाति विध्वंस को अपने आन्दोलन की बुनियादी आवश्यकता के रूप में स्वीकार किया गया है। भारत में अग्रेंजों के आगमन से राजनैतिक एवं सामाजिक परिवर्तनों की शुरूआत हुई जाति के शिकार समूहों को मुक्ति के संस्थागत, संगठनात्मक अवसरों की प्राप्ति हुई। हजारों साल जिन्हें हथियार विहीन रखा गया था अग्रेंजों के द्वारा हथियार थमा दिये गए। ब्रिटिश सेना में अछूतों को सहज स्वाभाविक रूप से भर्ती कर लिया गया सभी सैनिक जो अग्रेंजों की सेना में शामिल हुए अनिवार्य रूप से उन्हें शिक्षा भी दी गई। शिक्षा से वंचित गुलाम जातियों के लिए स्कूल कॉलेज के दरवाजे खोल दिये गए। सैद्धान्तिक रूप से गुलाम जातियों के लिए अपनी मुक्ति का यह रणनीतिक अवसर था। अग्रेंजों के द्वारा देश में नए उद्योग धन्धों यातायात के साधनों, तथा संचार माध्यमों की स्थापना की गई, खासतौर पर उद्योग धन्धों में श्रमिकों की जरूरतों को भी पराजित जातियों के द्वारा पूरा किया जाने लगा।

शताब्दियों से दिलों मे मुक्ति सम्मान एवं स्वाभिमान की आग को शिक्षा शस्त्रों और आर्थिक सामर्थ्य की खुराक मिलने लगी। विपरीत राजनैतिक परिस्थितियों में जहाँ विजेता जातियों को युद्धबदियों के रूप में अपनी बेड़ियों को तोड़ने का ऐतिहासिक अवसर नजर आने लगा। 1757 प्लासी का युद्ध अपने खोये हुए वैभव, गौरव को प्राप्त करने के अवसर के रूप में नजर आया। अग्रेंजी सेना में उस समय अधिकतर अछूत वर्ग के सैनिक ही थे! 1 जनवरी 1818 को वह ऐतिहासिक दिन आया जब पांच सौ अछूतों ने पेशवा बाजीराव के अठाईस हजार सैनिकों को रौदते हुए कुख्यात जातिवादी पेशवाशाही को चूलें हिला दी यह अछूतों के द्वारा जातिविध्वंस के अपने संकल्प का सशक्त उद्घोष था, जिसके बाद अछूतों ने मुक्ति के आन्दोलन को पूरे देश में सक्रिय कर दिया। सभी दिशाओं में गुलाम जातियों अछूत एवं आदिवासी समूहों ने अपने स्वाभिमान एवं स्वतन्त्रता के लिए प्रयास तेज कर दिया। हजारों साल से चली आ रही जाति व्यवस्था मुक्ति के इस आन्दोलन से भयभीत हो गई और अपने वर्चस्व को बनाये रखने के लिए नई रणनीति तैयार करने लगी कुछ अपने अन्दर परिस्थिति-जन्य सुधार (तथाकपित समाज-सुधार) करने की कोशिश करने लगे तथा कुछ अन्य अग्रेंजों से साँठ गाँठ करके उन्हें गुलाम जातियों से रणनीतिक सम्बन्ध न बनाने के लिए प्रेरित करने लगे अग्रेंज भारत में कोई मौलिक सामाजिक परिवर्तन के पक्षधर नहीं थे अतः (ब्राह्मणों) जातिवादियों के द्वारा सहयोग की अपील से भारत में अपने साम्राजय विस्तार की सम्भावनाएं तलाश करने लगे और ब्राह्मणी प्रभाव में आकर अपने सामाजिक सुधार के आन्दोलन को निस्तेज कर दिया, लेकिन अब तक गुलाम जातियों को पर्याप्त सामर्थ्य प्राप्त हो चुका था और वो जगह-जगह अपना आन्दोलन खड़ा कर रहे थे इन आन्दोलनों को कुचलने में अग्रेजों की कोई रूचि नहीं थी इससे ब्राह्मणवादी अग्रेजों से कुपित होने लगे अब उन्होंने स्वयं अग्रेजों के खिलाफ अपने जातीय वर्चस्व को बनाए रखने के लिए लामवबंद होना शुरू कर दिया।

लगभग सवा सौ साल के संघर्ष के बाद गुलाम जातियों ने जाति के विध्वंस को बाबा साहब के नेतृत्व में अपने संघर्ष का प्रथम उद्देश्य घोषित किया यह जाति व्यवस्था में किसी सतही सुधार या परिवर्तन का आन्दोलन नहीं था वरन् अपने तमाम उपादानों एवं उपागमों के साथ जाति का समूल नाश करना था जाति ने हजारों उपसमूहों में समाज को कैद कर लिया था इन कैद कोठरियों की दीवारों को बारुद लगाकर नेस्तनाबूत कर देना तथा आपसी भेदभाव द्वेष वैमनस्य तथा असमानता की बेड़ियों को तोड़कर शक्तिशाली समाज का निर्माण करना ही इन गुलाम जातियों का आन्दोलन बन गया। 'जाति तोड़ो-समाज जोड़ो' एक सशक्त नारे के रूप मे स्थापित हो गया जाति विध्वंस के बिना समतामूलक समाज सशक्त देश एवं लोकतान्त्रिक राष्ट्र का निर्माण नहीं किया जा सकता । आपसी एकता आन्दोलन की प्रथम शर्त है लेकिन पर्याप्त नहीं। विखण्डित समूह जाति का शिकार है जिन्हें वर्चस्व को बनाए रखने के लिए इस्तेमाल किया गया है जातिगत समूहों का जाति में कोई सैद्धान्तिक हिल व विश्वास नहीं है इसलिए अगर यह जातियाँ अपने दड़बों और बेड़ियों को तोड़कर बाहर निकल आती हैं तो भी जाति समाप्त नहीं होगी क्योंकि मूल रूप से जाति के सैद्धान्तिक पैरोकारों ने जाति को नहीं छोड़ा है जब तक जाति का फायदा उठाने वालों को इसका इस्तेमाल करने से नहीं रोका जाता, जातिगत व्यवहार समाप्त नहीं होगा। अत: जाति के शिकार लोग समाज निर्माण एवं सामर्थ्य प्राप्त करके जातिवादियों को जातियों के दुष्परिणाम के प्रति लोकतान्त्रिक मूल्य एवं नैतिकता से उन्हें परिचित कराने में प्रयासरत रहें। यदि ऐतिहासिक जड़ता वर्चस्व की धर्मान्धता उन्हें जाति का लोभ नही छोड़ने देती तो यह एक रणनीतिक भूल होगी गुलाम जातियां अपने ऐतिहासिक अनुभवों एवं नैतिक मूल्यों की स्थापना की प्रतिबद्धता के चलते जातिवाद एवं जातिवादियों को उनके षड्यन्त्रों के साथ इतिहास के पन्नों में हमेशा के लिए कैद कर लेंगे।

इस आन्दोलन को इसके अन्तिम मुकाम तक पहुँचाने की जिम्मेदारी उन अछूत एवं आदिवासी समूहों की है जिन्होंने जाति के प्रभाव को स्वीकार नहीं किया है जातिगत पम्पराएं एवं मान्यताएं उन्हें छू नहीं पाई है इसलिए जातीय व्यवस्था को बनाए रखने में उनका किंचित मात्र भी हित या रूचि नहीं है यही जाति व्यवस्था को समाप्त करने के सर्वाधिक सुयोग्य पात्र हैं जो लोग जाति को स्वीकार कर चुके हैं उसकी बाध्यता को अपना चुके हैं मानसिक रूप से व्यवस्था के गुलाम बन चुके हैं जरूरत होने के बावजूद भी मुक्ति की इच्छा के अभाव से ग्रस्त हैं।

दूसरे जाति से बाहर रहने के कारण अछूत आदिवासियों का शोषण व अत्याचार भी सबसे अधिक हुआ है, क्योंकि इन्होंने जाति की गुलामी स्वीकार नहीं की यही कारण है जाति व्यवस्था को समाप्त करने की जरूरत और इच्छा इन्हीं वर्गों की है। आन्दोलन के परिणामस्वरूप इन समूहों ने अपने अन्दर शक्ति का संचय करना शुरू कर दिया है। जरूरत इच्छा व शक्ति का गुणांक ही परिवर्तन लाता है जिस अनुपात में यह समूह शक्ति प्राप्त करता जाएगा सामाजिक परिवर्तन एवं आर्थिक मुक्ति का आन्दोलन इनके नेतृत्व में सफलता की ओर अग्रसर होता जाएगा।

तीसरे इस आन्दोलन का नेतृत्व करने का सर्वाधिक सैद्धान्तिक बल अछूत आदिवासियों में ही है ये समूह अछूत व आदिवासी इसलिए है कि इन्होंने मानवीय मूल्यों मैत्री व करूणा को नहीं छोड़ा तथा जातिगत भेदभाव असमानता अन्याय अत्याचार व अपमान को स्वीकार नहीं किया इनकी जीवन पद्धति आज भी नैतिकता सदाचार तथा बैद्धिकता पर आधारित है आधुनिक समय में जहां लोकतान्त्रिक शासन व समाज व्यवस्थाएं एक व्यक्ति एवं मूल्य पर आधारित है इन वर्गों को सहज स्वाभाविक रूप से नेतृत्त्व दायक स्थिति में पहुँचा देती है।

डॉ. अम्बेडकर प्रदत्त व संस्थागत संरचनाएं इन्हीं कारणों से वर्तमान भारत की सर्वोत्कृष्ट प्रतिस्थापनाएं है। भारत का संविधान, जातिव्यवस्था के खिलाफ आन्दोलन बाबासाहेब का लेखन आदि के द्वारा पूरे देश में जाति मुक्ति का आन्दोलन अपने अन्तिम, निर्णायक मुकाम पर पहुँच रहा है, एक तरफ बाबासाहेब के लेखन मुक्ति साहित्य के रूप में स्थापित हो गया है सभी भाषाओं क्षेत्रों में जाति विध्वंस के आन्दोलन के 'बीज वाक्य' के रूप में काम कर रहा है। इस लेखन ने समकालीन बहुआयामी मुक्ति साहित्य आन्दोलन की बुनियाद तैयार की है। भारतीय संविधान लोकतन्त्र की स्थापना का सजीव दस्तावेज है न सिर्फ यह सामाजिक आर्थिक व राजनैतिक न्याय की स्थापना करता है वरन् सभी के लिए समानता स्वतन्त्रा एवं नैतिक विकास सुनिश्चित करता है स्वावलम्बन एवं स्वतन्त्रा की राह पर व्यक्ति को सशक्ति व बौद्धिक बनाता है यह ''अत्त दीपो भव'' के सिद्धान्त को सार्वभौमिकता प्रदान करता है यह भारत में सम्यक लोकतन्त्र की स्थापना का घोषणापत्र है। वर्तमान में बाबासाहेब द्वारा प्रेरित धार्मिक सामाजिक राजनैतिक सगठनों व संस्थाओं के द्वारा देश विदेश मे मानव मुक्ति व जातिवादियों के स्वाभिमानी आन्दोलन के रूप में सामने आया है इस प्रकार हम कह सकते है कि बाबासाहेब के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, संवैधानिक व धार्मिक सिद्धान्तों पर चलकर ही भारत में लोकतान्त्रिक समाज एवं सुदृढ़ एवं सशक्त राष्ट्र का निर्माण संभव है। □

(लेखक दिल्ली विश्वविद्यालय के दयाल सिंह कॉलेज में प्राध्यापक हैं)

कौन करेगा डॉ. अम्बेडकर से नई मुलाकात!

▪ सुभाष गाताडे

आमतौर पर होता यही है कि अपने दौर में बहुत अहम् भूमिका निभाई शख्सियतों की यादें भी वक्त के साथ धूमिल पड़ती जाती हैं और खास अवसर पर उन्हें याद करने के लिए उनसे ताल्लुक रखनेवाली तंजिमों को, संगठनों को या उनके नाम से जारी हुकूमतों को पहल लेनी पड़ती है। लेकिन जहां तक डॉ. अम्बेडकर का सवाल है यह सबके सामने है कि सरकारी कोशिशें अपनी जगह पर यथावत जारी हैं लेकिन समय बीतने के साथ उनके बारे में यह आकर्षण बढ़ता ही जा रहा है, समाज के नए-नए तबके उनके योगदान से रूबरू हो रहे हैं और इस कारवां से जुड़ रहे हैं। लेकिन क्या हम कह सकते हैं कि डॉ. अम्बेडकर की जिस छवि का अधिक बोलबाला है, वह उनके विराट व्यक्तित्व और उनके महान योगदान के साथ मेल खाती है या कहीं न कहीं कोई दरार है।

डॉ. अम्बेडकर से 'नयी मुलाकात' किए बिना इस काम को पूरा नहीं किया जा सकता। मेरे लिए यह एक पहेली है कि एक प्रकाण्ड विद्वान आदमी, जिसके अपने निजी पुस्तकालय में बीस हजार से अधिक किताबें थीं, जिसने अपने लगभग चार दशक के राजनीतिक-सामाजिक जीवन में अर्थशास्त्र से लेकर श्रमिक आन्दोलन तक, जाति-प्रथा से लेकर अंतरराष्ट्रीय सम्बन्धों पर अपनी कलम चलायी उसके बारे में हम इतना कम क्यों जानते हैं?

यह बात अधिक महत्वपूर्ण है कि इस बात को नये सिरे से समझा जाए कि आखिर इस शख्स ने 20वीं सदी के पूर्वार्द्ध में शोषितों-उत्पीड़ितों की जिन्दगियों में कौन से तार छेड़े थे कि आज भी उनकी अनुगूंज सुनाई दे रही है। और इस बात पर भी गौर किया जाए कि 21वीं सदी की इस पहली दहाई के अन्त में 'जबकि पूंजी के राज की चौतरफा तूती बोलती दिख रही है' अर्थात् मेहनत के हम में खड़ी वर्गाधारित शक्तियां हाशिये पर पड़ी दिख रही हैं, जब 'इतिहास का अन्त' होने की घोषणाएं की जा रही हैं, दूसरी तरफ तमाम अस्मिताधारित आन्दोलन या सामाजिक आन्दोलन गतिरोध का शिकार होते दिख रहे हैं। ऐसे कठिन वक्त में अम्बेडकर के जीवन, विचार एवम् संघर्ष से हम क्या कुछ नए सबक हासिल कर सकते हैं?

लेकिन क्या नयी मुलाकात मुमकिन है, अगर हम व्यक्ति विशेष को या उनके योगदान को पुराने चश्मे से ही देखें, उन्हीं नजरों से देखें जिस तरह अब तक हम देखते आए हैं तो नयी मुलाकात में भी अधिक से अधिक पुरानी तस्वीर के नए डिटेल्स/विवरण का फरक दिख सकता है। इसलिए जरूरी है कि हम अपने दिमाग में मौजूद उस स्थापित पुरानी छवि को ही प्रश्नांकित करें जो एक तरह से हमारे सहजबोध/भाव का हिस्सा बनी है या बनायी गयी है। एक बात जो डॉ. अम्बेडकर के बारे में कही जाती है, कि वह 'दलितों के मसीहा' थे। दिलचस्प है कि समूचे राजनीतिक स्पेक्ट्रम में यह बात स्वीकार्य है। अपने आप को उनका सच्चा वारिस घोषित करने वालों के लिए भी यह बात सुनकर कोई बेआरामी नहीं होती।

क्या उनका यह चित्रण पूरी तौर पर सही है? या (उन्हें या उनको) दलितों का मसीहा कह देने से उनके जीवन के तमाम पक्ष छूट जाते हैं और उनकी एकांगी किस्म की छवि बनती है।

अगर उनके इस चित्रण को सही मान लें तो उनके लगभग चालीस साल के राजनीतिक-सामाजिक जीवन के कई अहम् पहलुओं पर चुप्पी साधनी पड़ती है। और यही बात स्वीकारनी पड़ती है कि मनु के विधान स्वीकार्यता वाले हमारे समाज में जिसने शूद्रों-अतिशूद्रों-स्त्रियों की विशाल आबादी को तमाम मानवीय हकों से वंचित किया था उन्होंने अतिशूद्रों के अधिकारों के लिए कुछ संघर्ष किया एवम् कुछ रियायतें हासिल कीं। फिर इस प्रश्न का उत्तर देना कठिन हो जाता है कि क्या वे स्त्रियों के अधिकारों के लिए संघर्षरत नहीं रहे या क्या किसानों-मजदूरों की समस्या की ओर

उनकी दृष्टि नहीं गयी, क्या जनता के आर्थिक सवालों से वह बेखबर रहे या क्या वह शूद्रों-अतिशूद्रों का नारकीय जीवन जीने के लिए मजबूर करने वाली जातियों के खिलाफ थे या उस मानसिकता के खिलाफ थे, जिसने इस स्थिति का निर्माण किया था? शिक्षा संस्थानों का जाल बिछाने के पीछे तथा अखबार व पत्र-पत्रिकाओं को शुरू करने के पीछे उनका क्या मकसद था? और सबसे बढ़ कर क्या उन्होंने उपनिवेशवादियों के खिलाफ जारी राजनीतिक आन्दोलन की सीमा को उजागर नहीं किया। जिसके लिए उन्हें जोखिम उठाना पड़ा?

एक गुलाम मुल्क में उपनिवेशवादियों के खिलाफ राजनीतिक आन्दोलनों के साथ एक सुविधा रहती है कि प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष समूचे जनसमुदाय का उन्हें समर्थन प्राप्त रहता है। लेकिन बाबासाहेब की अपनी जद्दोजहद का अच्छा-खासा हिस्सा समाज की अपनी बीमारियों, परम्पराओं, संस्थाओं के खिलाफ, उपनिवेशवादियों के आगमन से पहले से चली आ रही उस सामाजिक-धार्मिक निजाम के खिलाफ था। उनके सामने खड़ी चुनौती को आसानी से समझा जा सकता है जहां उन्हें उन लोगों को भी निशाने पर लेना पड़ रहा था जो खुद साम्राज्यवाद से उत्पीड़ित थे या उसके विरोध में संघर्ष के लिए तैयार थे, मगर जो खुद भारतीय समाज की उस मंजिलनुमा बनावट के खिलाफ खड़े होने के लिए तैयार नहीं थे। अपने एक आलेख में डॉ. अम्बेडकर ने उच्च-नीच अनुक्रम, शुद्धता एवम् प्रदूषण पर टिकी भारतीय समाज रचना की तुलना उस बहुमंजिली इमारत से की थी जिसमें एक मंजिल से दूसरी मंजिल पर जाने के तमाम दरवाजे बिल्कुल बन्द थे। वे लोग जो जातिप्रथा को श्रम का विभाजन कह कर महिमामण्डित करते थे, उन्हें करारा जवाब देते हुए उन्होंने यह भी कहा था कि 'जातिप्रथा श्रम का नहीं बल्कि श्रमिकों का विभाजन है।'

उनके जीवन एवम् संघर्ष को सरसरी निगाह से देखने पर पता चलता है कि तमाम शोषितों-उत्पीड़ितों के हालात के प्रति उनका गहरा सरोकार एवम् उसको बदल डालने के प्रति उनकी प्रतिबद्धता थी। और अहम बात जो उनमें नजर आती है वह है राजनीतिक-आर्थिक संघर्षों में या सामाजिक-सांस्कृतिक हलचलों के बीच उनके यहां किसी 'चीन की दीवार' की अनुपस्थिति। (क्या यह कहना अनुचित होगा कि उत्तर अम्बेडकर आन्दोलन में इस सिलसिले को बनाए नहीं रखा जा सका)

उनके जीवन के सबसे पहले ऐतिहासिक संघर्ष को ही देखें जब 1927 में महाड़ चावदार तालाब पर सत्याग्रह करने वह पहुंचते हैं जिसके बारे में मराठी में हम कहते हैं कि जब 'उन्होंने पानी में आग लगा दी।'

मालूम हो कि महाराष्ट्र के कोंकण इलाके के महाड़ नामक क्षेत्र के सार्वजनिकि तालाब पर हजारों की संख्या में दलितों ने अन्य तमाम समान विचारी लोगों ने बाबासाहेब अम्बेडकर के नेतृत्व में एक सत्याग्रह किया था। यूं तो कहने के लिए यह महज पानी पीने का हक था, लेकिन इसकी विशिष्टता इसी में निहित थी कि सदियों से उच्च-नीच अनुक्रम पर टिके, प्रदूषण एवम् शुद्धता पर आधारित समाज के उत्पीड़ित जनों ने अपने विद्रोह की एक संगठित हुंकार भरी थी।

इस अवसर पर आयोजित सम्मेलन के प्रस्ताव गौर करने लायक हैं। प्रस्तुत सम्मेलन में कई सारे महत्वपूर्ण प्रस्ताव पारित किए गए। जंगल की जमीन दलितों को खेती के लिए दी जाए, उन्हें सरकारी नौकरियां मिलें, सरकार न केवल शिक्षा को अनिवार्य करे बल्कि 20 साल के छोटे लड़कों तथा 15 साल से छोटी लड़कियों की शादी पर भी पाबन्दी लगाए, आदि विभिन्न आर्थिक-सामाजिक मसलों पर प्रस्ताव मंजूर हुए। सरकार से अपील की गई कि वह शराब बन्दी लागू करे तथा मरे हुए जानवरों का मांस खाने पर पाबंदी लगाए। सम्मेलन में उच्चवर्णियों से भी ह्वाहन किया कि वे अछूतों को उनके नागरिक अधिकार दिलाने में सहायता करें, उन्हें नौकरियां दें, अपने मरे हुए जानवरों को खुद दफनाएं।

"अन्य लोगों की तरह हम भी इन्सान हैं, इस बात को साबित करने के लिए हम तालाब पार जाएंगे। अर्थात् यह सभी समता संग्राम की शुरुआत करने के लिए ही बुलाई गई है। आज की इस सभा और 5 मई 1789 को फ्रांसीसी लोगों की क्रांतिकारी राष्ट्रीय सभा में बहुत समानताएं हैं। ..इस राष्ट्रीय सभा ने राजा-रानी को सूली पर चढ़ाया था, सम्पन्न तबकों के लिए जीना मुश्किल कर दिया था, उनकी सम्पत्ति जब्त की थी। 15 साल से ज्यादा समय तक समूचे यूरोप में इसने अराजकता पैदा की थी। ऐसा इस पर आरोप लगता है। मेरे ख्याल से ऐसे लोगों को इस सभा का वास्तविक निहितार्थ समझ नहीं आया। इसी सभा ने 'जन्मजात मानवीय अधिकारों का घोषणापत्र जारी किया था.. इसने महज फ्रान्स में ही क्रान्ति को अंजाम नहीं दिया बल्कि समूची दुनिया में एक क्रांति को जन्म दिया ऐसा कहना अनुचित नहीं होगा।" उन्होंने अपील की थी इस सभा को फ्रेंच राष्ट्रीय सभा का लक्ष्य अपने सामने रखना चाहिए...

इस सत्याग्रह के अवसर पर महिलाओं को दिया गया उनका स्वतंत्र उद्बोधन काफी चर्चित रहा है। *मनुस्मृति* दहन के बाद रात में स्त्रियों को अलग सम्बोधित करते हुए डॉ. अम्बेडकर ने जोर देकर कहा था:

"परिवार की दिक्कतें स्त्री एवम् पुरुष दोनों मिल कर ही सुलझाते हैं और उसी तरह समाज की, दुनिया की कठिनाइयों को भी स्त्रियों एवम् पुरुषों दोनों को मिल कर ही सुलझानी चाहिए। स्त्रियां ही इस काम को बखूबी कर

सकती हैं, इस पर मुझे पूरा यकीन है। आगे से आप को भी सभाओं एवम् सम्मेलनों में आना चाहिए।

आप ने हम पुरुषों को जन्म दिया है। आपके पेट से जन्म लेना आखिर अपराध क्यों माना जाता है और ब्राह्मण स्त्री के पेट से जन्म लेना पुण्य क्यों समझा जाता है? ...स्त्रियां गृहलक्ष्मी बनें, यही हमें क्यों सोचना चाहिए, इसके आगे की मंजिल उन्हें क्यों नहीं पार करनी चाहिए? ...ज्ञान और विद्या की आवश्यकता सिर्फ पुरुषों के लिए नहीं है, वह स्त्रियों के लिए भी उतनी ही जरूरी हैं। इसलिए आनेवाली पीढ़ी को सुधारना हो तो आप को चाहिए कि बेटों के साथ बेटियों को भी शिक्षा दें।''

स्त्रियों को राजनीतिक-सामाजिक सक्रियताओं में उतारने की, उन्हें अधिकारों से लैस करने की चिन्ता हमें उनके समूचे जीवन में दिखती है।

अगर हम 50 के दशक में नेहरू मंत्रिमण्डल से उनके इस्तीफे पर गौर करें तो क्या वजह समझ में आती है, जहां वे इस बात के प्रति क्षुब्ध हैं कि अनुसूचित जातियों एवम् जनजातियों के अधिकारियों को सुनिश्चित करने के प्रति सरकार पर्याप्त गम्भीरता का परिचय नहीं दे रही है। वहीं वे इस बात को विशेष तौर पर रेखांकित करते हैं कि उनके इस निर्णय लेने के पीछे 'हिन्दू कोड बिल' को लेकर नजर आती सरकार की आनाकानी का मसला अहम था।

आखिर क्या था 'हिन्दू कोड बिल'? दरअसल हिन्दू कोड बिल के जरिये आपसी सम्बन्ध विच्छेद एवम् जायदाद के मामले में हिन्दू महिलाओं को अधिकार दिए जा रहे थे। सभी जानते हैं कि उसके पहले हिन्दुओं में बहुपत्नी प्रथा कायम थी, यहां तक कि तलाक या सम्पत्ति के मामले में उन्हें कोई अधिकार नहीं प्राप्त थे। हिन्दू कोड बिल को लेकर डॉ. अम्बेडकर को जो जद्दोजहद करनी पड़ी वह अपने-आप में एक रोचक इतिहास है। स्त्रियों को अधिकार-सम्पन्न कर 'हिन्दू संस्कृति एवं परम्परा को ध्वस्त करने' की कोशिश करने के लिए कई बार उनके घर पर प्रदर्शन भी हुए।

नेहरू मंत्रिमण्डल से इस्तीफा सौंपते हुए प्रस्तुत वक्तव्य में उन्होंने लिखा था :

''हिन्दू कोड बिल एक तरह से इस मुल्क की विधायिका द्वारा हाथ में लिया गया समाज सुधार का सबसे बड़ा कदम था। अतीत में हिन्दोस्तां की विधायिका द्वारा पारित किसी भी कानून से या भविष्य में पारित किए जा सकने वाला किसी भी कानून से इसकी तुलना नहीं की जा सकती। वर्ग और वर्ग के बीच की गैरबराबरी, लिंगों के बीच की गैरबराबरी-जो हिन्दू समाज की आत्मा है-को अक्षुण्ण बनाए रखना तथा आर्थिक समस्याओं को लेकर एक के बाद एक विधेयक पारित करते रहना, एक तरह से संविधान का माखौल उड़ाना है और गोबर के ढेर पर महल खड़े करने जैसा है। मेरे लिए हिन्दू कोड बिल का यही महत्व रहा है। और अपने मतभेदों के बावजूद इसी वजह से मैं मंत्रिमंडल का सदस्य बना रहा।''

डॉ. अम्बेडकर के जीवन और संघर्षो की व्यापकता जानना हो, तो तीस का दशक कई मायनों में अहम दिखता है जिसमें वह सामाजिक-सांस्कृतिक मोर्चे पर भी नयी जमीन तोड़ते प्रतीत होते हैं, वहीं वह राजनीतिक-आर्थिक मसले पर भी एक अलग रास्ता अख्तियार करते नजर आते हैं।

आमतौर पर तीस के दशक की कुछ घटनाओं के बारे में अधिक चर्चा होती है, जैसे पूना पैक्ट का प्रसंग हो या 2 मार्च 1930 से लेकर 3 मार्च 1934 तक नाशिक के कालाराम मन्दिर में दलितों के प्रवेश के लिए चला ऐतिहासिक सत्याग्रह हो-जो अन्ततः असफल हुआ-या इस सत्याग्रह की असफलता के बाद येवला, नाशिक की सभा (13 अक्तूबर 1935) में बाबासाहेब द्वारा धर्म परिवर्तन के लिए की गयी घोषणा हो, आदि।

इस झंझावाती दौर में जहां एक तरफ वह 'चातुर्वर्ण्य और विषमता की बुनियाद पर टिके हिन्दू धर्म के खिलाफ', 'पिछड़े लोगों को मानवीय विकास का अवसर प्रदान न करने देने की नैतिकता' के खिलाफ अपनी बगावत को आगे बढ़ा रहे हैं, ''मैंने भले ही हिन्दू के तौर पर जन्म लिया, लेकिन हिन्दू के तौर पर मरूंगा नहीं'' ऐसा ऐलान कर रहे हैं, लेकिन उसी के समानान्तर यह स्थिति भी दिखती है कि वह किसानों-मजदूरों के हक में कुछ निर्णायक कदम बढ़ाते है। जैसे अगस्त 1936 में उनकी अगुवाई में 'इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी' की स्थापना होती है; जनवरी 1938 में इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी' कम्यूनिस्ट पार्टी आदि की पहल पर बम्बई विधानमंडल पर खोत प्रथा (एक तरह की जमींदारी प्रथा) के खिलाफ 15 हजार किसानों का लड़ाकू प्रदर्शन आयोजित किया जाता है या फरवरी 1937 में ही मनमाड, महाराष्ट्र में जी.आई.पी. रेलवे के दलित वर्ग कामगार सम्मेलन में डॉ. अम्बेडकर अपना ऐतिहासिक भाषण पेश करते हैं जिसमें वह भारतीय श्रमिक आन्दोलन की दशा-दिशा के बारे में एक अलग परिप्रेक्ष्य रखते हैं और दलित कामगारों को सम्बोधित करते हुए उन्हें उनके दो दुश्मनों 'ब्राह्मणवाद' और 'पूंजीवाद' के बारे में आगाह करते हैं।

15 अगस्त 1936 के 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' के माध्यम से इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी की स्थापना की उद्घोषणा की गई थी। समाचारपत्र ने इस सम्बन्ध में लिखा था कि 'मुम्बई प्रेसिडेन्सी के दोनों सदनों के लिए 1935 के नये विधान के अनुसार आयोजित चुनावों में भाग लेने हेतु एक नये

राजनैतिक दल की स्थापना की गई है। 12 सितम्बर 1936 के 'जनता' समाचार पत्र में 'मजदूर आन्दोलन के तीन बुनियादी सिद्धान्त' शीर्षक से सम्पादकीय लिखा गया था जिसमें मजदूर पक्ष के तीन बुनियादी सिद्धान्तों की विवेचना की गई थी। मालूम हो कि 17 फरवरी 1937 को सम्पन्न चुनावों में 'स्वतंत्र मजदूर पार्टी' को अच्छी सफलता मिली जिसके 17 प्रत्याशी विजयी घोषित किए गए। कांग्रेस को 87 स्थानों पर जीत हासिल हुई तो मुस्लिम लीग 19 स्थानों पर जीती। इन 17 प्रत्याशियों में से 12 आरक्षित स्थानों से, दो खुले प्रवर्ग से तथा तीन सम्मिलित स्थान से जीते थे।

- **खेती की प्रगति के लिए बैंकों, किसानों की कोऑपरेटिव सोसायटी और मार्केटिंग सोसायटी कायम की जाएंगी।**
- **छोटे-छोटे खेतों पर किसानों की निर्भरता उनकी गरीबी का मुख्य कारण है। इसे दूर करने के लिए खेती का बोझ कम करने के लिए किसान आबादी को अन्य उपयुक्त रोजगार दिलाए जाएंगे।**
- **लोकहित के नजरिये से जरूरी वक्त पर देश के उद्योगों की मिल्कियत सरकार हाथ में ले।**
- **जमींदारों एवम् भूस्वामियों के हाथों काश्तकारों की सुरक्षा करने के लिए कानून बनाए जाएंगे।**
- **कारखानों में काम करनेवाले मजदूरों एवं किसानों की बेहतरी के लिए कानून बनाने पर जोर होगा।**
- **बेरोजगारी उन्मूलन का जिम्मा सरकार पर है, इस सिद्धान्त के अनुकूल भूमिहीन किसानों एवं बेरोजगार श्रमिकों के लिए योजनाएं शुरू की जाएंगी।**
- **सूदखोरों से गरीब कर्जदारों की रक्षा के लिए और किसानों को कर्जामुक्त करने के लिए कानून बनाए जाएंगे।**

(इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी के घोषणापत्र से, 'जनता' 1936)

चुनावी घमासान में ही इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी ने कोंकण इलाके में मौजूद खेती प्रथा को भी आन्दोलन का मसला बनाया। कोंकण के किसान इस जमींदारी पद्धति से बेहद त्रस्त थे। अधिकांश खोत ब्राह्मण थे जिन्हें पेशवाओं के राज में यह जमीनें मिली थीं। सितम्बर 1937 में खोती जमींदारी प्रथा के उन्मूलन के हक में डॉ. अम्बेडकर ने विधानमण्डल में अपने विचार रखे और एक बिल पेश किया।

इस बीच मजदूर पक्ष तथा मेहनतकश-किसानों के अन्य संगठनों की ओर से कोंकण के इलाके में प्रचार मुहिम जारी थी, जिसके अन्तर्गत 10 जनवरी 1937 को बम्बई विधानमंडल पर 25 हजार से अधिक किसानों का विशाल मोर्चा निकाला गया। ये किसान कोंकण सतारा, नाशिक तथा बम्बई प्रांत के अन्य कोने-कोने से आए थे। इस विशाल रैली की केन्द्रीय मांगें थी-किसानों के लगान माफ हों तथा जो जमीन को जोते वही जमीन का मालिक बने।

13 फरवरी 1937 की सुबह मनमाड के दलित रेलवे मजदूरों को डॉ. अम्बेडकर का सम्बोधन कई मायनों में असाधारण कहा जाता है। कई महिनों से इस सम्मेलन की तैयारी चल रही थी। आयोजकों के मुताबिक सम्मेलन का समाचार प्राप्त होते ही 'दिल्ली, इलाहाबाद, लखनऊ, कानपुर, जबलपुर, रायपुर आदि बैच लाइन विभागों से परिषद् की कामयाबी के सन्देश' मिले थे। सम्मेलन की पृष्ठभूमि बताते हुए वितरित पर्चे में लिखा गया था ''आर्थिक विपन्नता से मजदूर वर्ग बुरी तरह से प्रभावित हो रहा है। गरीब मजदूरों के हालात तो बदतर हो चुके हैं। अछूत मजदूरों पर दोहरी मार पड़ती है। इन अत्याचारों के विरुद्ध अछूत मजदूरों को एक करना इस सम्मेलन का उद्देश्य है।''

सोचने का सवाल बनता है कि इस मुल्क के मेहनतकशों की बेहतरी के लिए, जमींदारी प्रथा के खिलाफ संघर्षरत किसानों की आवाज बुलन्द करने के लिए, स्त्रियों के सशक्तिकरण के लिए ताउम्र व्यस्त रहे डॉ. अम्बेडकर को सिर्फ 'दलितों का मसीहा' घोषित करना, उनका अवमूल्यन नहीं है? □

(लेखक जाने-माने स्वतंत्र पत्रकार हैं।)

महिला अधिकार

बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर और हिन्दू कोड बिल

▪ डॉ. कौशल पंवार

डॉ. अम्बेडकर भारतीय स्त्री ♦ खासकर, हिन्दू स्त्री-जिसमें सवर्ण तथा दलित दोनों ही शामिल हैं उनकी सामाजिक, आर्थिक, और राजनैतिक स्थिति में क्रांतिकारी परिवर्तन चाहते थे। उनकी दशा सुधारने के लिए वे एक ऐसा कानून बनाना चाहते थे जो विशुद्ध रूप से उनकी सामाजिक, कानूनी स्थिति सुधारने में संजीवनी बूटी की तरह काम करे। इसलिए उन्होंने समस्त औरतों के हक में 'हिन्दू कोड बिल' बनाया। इस हिन्दू कोड बिल और डॉ. अम्बेडकर दोनों को ही कट्टर पंथियों का भयंकर विरोध सहना पड़ा। हिन्दू कोड बिल के विरोध में डॉ. अम्बेडकर को कई बार व्यक्तिगत अपमान झेलना पड़ा। उनके घर पर पत्थर तक बरसाए गए और संसद में भी उनका बहिष्कार किया गया। हिन्दू कोड बिल पास कराने के लिए डॉ. अम्बेडकर के साथ-साथ अनेक दलित गैर-दलित महिलाओं ने भारतीय महिलाओं की सामाजिक व आर्थिक लड़ाई लड़ी है। 'हिन्दू कोड बिल' पर दुर्गाबाई देशमुख, लोकसभा की सदस्य श्रीमती पदमजी नायडू, राजश्री, सौ. चन्द्रकला, उर्मिला मेहता, मिसेस मिठान महिला कांग्रेस की मन्त्री कुमारी मुकुल और उनके महिला जत्थे ने डॉ. अम्बेडकर के साथ गांव-गांव, नगर-नगर घूमकर सभा और जनसभाओं में भारतीय महिलाओं की सामाजिक आर्थिक दुर्दशा के चित्र खींचे।

बाबासाहेब भारतीय स्त्रियों की उन्नति के लिए जितने प्रगतिशील कदम उठाते उतना ही कट्टरपंथी उनको पीछे खींचने के प्रयास में लगे रहते। हिन्दू कोड बिल जैसे प्रगतिशील कदम से चिढ़कर कट्टरपंथियों ने डॉ. अम्बेडकर के खिलाफ चारों तरफ वैमनस्य, घृणा और तनाव का जाल बिछा दिया। पुरुष प्रधान संस्कृति पर प्रहार करते हुए इस बिल ने भारतीय महिलाओं को पुरुषों के बराबर कानूनी अधिकार देकर उनको गौरवान्वित किया। इस बिल की वजह से हिन्दू स्त्री को विवाह, तलाक, आदि में पुरुषों जैसा ही हक दिया गया था। इस बिल में आठ और नौ अधिनियम बनाए गए।

1. हिन्दू विवाह अधिनियम।
2. विशेष विवाह अधिनियम।
3. गोद लेना दत्तकग्रहण अल्पायु-संरक्षता अधिनियम।
4. हिन्दू उत्तराधिकारी अधिनियम।
5. निर्बल तथा साधनहीन परिवार के सदस्यों का भरण-पोषण अधिनियम।
6. अप्राप्तवय संरक्षण सम्बन्धी अधिनियम।
7. उत्तराधिकारी अधिनियम और
8. हिन्दू विधवा को पुनर्विवाह अधिकार अधिनियम।
9. हिन्दू कोड बिल में पिता की सम्पत्ति में अधिकार आदि।

हिन्दू कोड बिल द्वारा किसी भी जाति की लड़की या लड़के का विवाह होना अवैध नहीं था। हिन्दू कोड बिल के अनुसार पत्नी और पति एक समय में एक ही विवाह कर सकते थे। अगर कोई पति अपनी पहली पत्नी के रहते और पत्नी पहले पति के रहते विवाह करता है तो उसे कानूनी दण्ड मिलेगा। हिन्दू कोड बिल स्त्री में पति के मर जाने पर हिन्दू स्त्री को पति की सम्पत्ति में उसकी सन्तान के बराबर हिस्सा या अंश देने का नियम बनाया। हिन्दू धर्मशास्त्रों में विधवा के लिए दूसरी शादी का कोई विधान नहीं था और न ही जायदा में उसे कोई हिस्सा या अंश मिलता था। हिन्दू कोड बिल की कृपा से पिता की मृत्यु के पश्चात् पुत्री को भी भाइयों के बराबर जायदाद का वारिस बना दिया गया था। इसी तरह दत्तक या गोद लेने का अधिकार अपने कुल में से पैदा हुए बच्चे को ही प्राप्त था, किन्तु कोड के अनुसार किसी भी हिन्दू परिवार में जन्मी लड़की या लड़के को गोद लिया जा सकता था और वह लड़का या लड़की चाहे वह किसी भी हिन्दू जाति के हों, गोद लिए जाने वाले की जायदाद के वारिस बन जाते हैं। मजे की बात यह थी कि अब न केवल लड़का ही दत्तक बन सकता था, बल्कि लड़की भी दत्तक ली जा सकती थी। संक्षेप में कहा जा सकता है कि हिन्दू कोड बिल ने हिन्दुओं के पुराने धर्मगढ़ को भस्मसात करके रख दिया था।

हिन्दू कोड बिल में इन अधिनियमों को पास कराके डॉ. अम्बेडकर स्त्रियों की स्थिति में कानूनी रूप से आमूल चूल परिवर्तन चाहते थे। हिन्दू कोड बिल द्वारा परिवार व समाज में महिलाओं की सामाजिक व आर्थिक स्थिति सुदृढ़ हो इसलिए उन्होंने परिवार में पुत्री की हैसियत

पुत्र के बराबर तथा पत्नी की हैसियत पति के बराबर रखी। तलाक देने की स्थिति में पति को पत्नी के गुजारे के लिए गुजारा भत्ता देना पड़ेगा तथा सम्पत्ति बंटवारे में पुत्र को पुत्री के बराबर हिस्सा मिलेगा। महिलाएं भी अपनी मर्जी से बच्चा गोद ले सकती हैं। बच्चे को गोद लेने का अधिकार मिलने पर जिन स्त्रियों के बच्चे नहीं होते थे, उनको परिवार और समाज द्वारा दिए जा रहे मानसिक और शारीरिक उत्पीड़न से छुटकारा मिल जाएगा। 'हिन्दू कोड बिल' पर डॉ.अम्बेडकर का मानना था कि वे 'हिन्दू कोड बिल' पास कराकर भारत की समस्त नारी जाति का कल्याण करना चाहते थे। उन्होंने 'हिन्दू कोड बिल' पर विचार होने वाले दिनों में अनेक सवर्ण जाति से सम्बन्ध रखने वाली क्रूर अत्याचारी, शराबी, कबाबी, ऐबी पतियों द्वारा परित्यक्त अनेक युवतियों और प्रौढ़ महिलाओं को देखा था, जिन्हें उनके पतियों ने त्यागकर उनके जीवन-निर्वाह के लिए नाममात्र का चार-पांच रुपया मासिक गुजारा-भत्ता बांधा हुआ था। अक्सर तो पति इतना भत्ता भी नहीं देते थे। ये परित्यक्ता औरतें गुलामी और दरिद्रता भरा जीवन जीने को मजबूर थीं। इन औरतों की ऐसी दयनीय दशा को देखकर इनके माता-पिता, भाई-बन्धु भी दुःखी रहते थे, क्योंकि इन परित्यक्त औरतों के दुःख को खत्म करने वाला, कोई कानून नहीं था। 'हिन्दू कोड बिल' ही वह कानून हो सकता था जो ऐसी दीनहीन, दुःखी-सताई औरतों के पक्ष में खड़ा हो सकता था। कहने का तात्पर्य यह है कि 'हिन्दू कोड बिल भारतीय स्त्रियों की सोचनीय दशा में आमूल-चूल परिवर्तन लाने वाला कानून था, जिसमें समाज में किसी भी रूप व परिस्थिति में सताई गई औरतों के हक में दोषियों के लिए दण्ड का प्रावधान था। इस बिल के द्वारा डॉ. अम्बेडकर और उनकी महिला साथी महिलाओं की स्थिति में कानूनी सुधार व हक के लिए प्रयास कर रहे थे। हिन्दू कोड बिल के समर्थन में 21 अगस्त 1949 में दादर के भंडारी हाल में एक परिषद आयोजित की गई जिसमें 25 महिला संगठनों और 10 सामाजिक संगठनों ने हिन्दू कोड बिल के समर्थन में सरकार को मांग पत्र सौंपा। 19 जनवरी 1950 में विल्सन कालेज में 5:30 बजे 'हिन्दू कोड बिल' के समर्थन में उर्मिला मेहता व श्रीमती मिठान ने अपने धुआंधार भाषणों द्वारा हिन्दू कोड बिल का जोरदार समर्थन किया। यह आन्दोलन लगभग 5 सालों तक चला जिसमें अनेकों-अनेक दलित व गैर दलित महिलाएं जुड़ीं। इस आन्दोलन का मकसद ही सामाजिक न्याय दिलाना था जिसका वर्षों से हनन होता आ रहा था।

अक्सर डॉ. अम्बेडकर और महिला साथियों द्वारा आयोजित हिन्दू कोड बिल चर्चा सभाओं में कट्टरपंथियों द्वारा सीधा हमला कर दिया जाता था, और चर्चा सभाओं को जबर्दस्ती बंद करा दिया जाता था। उस समय के अखबार भी 'हिन्दू कोड बिल' के खिलाफ अनेक भड़काऊ लेख छाप रहे थे। उस समय देश का माहौल डॉ. अम्बेडकर और उनकी महिला साथियों के खिलाफ विषाक्त हो गया था। परन्तु ये सब डटे रहे। आखिर में जब 'हिन्दू कोड बिल' संसद में पास न हो सका, तब डॉ. अम्बेडकर ने विरोध-स्वरूप संसद से त्यागपत्र दे दिया। □

(लेखिका दिल्ली विश्वविद्यालय के मोती लाल नेहरू कॉलेज में प्राध्यापक हैं।)

बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर का अंतिम संदेश

''मैं बहुत मुश्किल से इस कारवां को इस स्थिति तक लाया हूं, जहां यह आज दिखाई दे रहा है। इस कारवां को आगे बढ़ने ही देना है, चाहे कितनी ही बाधाएं, रूकावटें या परेशानियाँ इसके रास्ते में क्यों न आएं। यदि मेरे लोग, मेरे सेनापति इस कारवां को आगे नहीं ले जा सकें तो उन्हें इसे यहीं, इसी दशा में छोड़ देना, पर किसी भी हालत में कारवां को पीछे मोड़ने की अनुमति नहीं मिलनी चाहिए।''

अर्थवेत्ता

डॉ. अम्बेडकर का आर्थिक दर्शन

▪ डॉ. बिबेक कुमार रजक

डॉ. अम्बेडकर बहु-मुखी प्रतिभा के धनी थे। भारतीय समाज तथा समाजशास्त्री के सभी विषयों पर उनकी समझ अदभुत थी। तत्कालीन भारतीय बुद्धिजीवियों में डॉ. अम्बेडकर को अग्रणी माना जाए तो यह गलत नहीं होगा, लेकिन इस देश का दुर्भाग्य है कि यहाँ डॉ. अम्बेडकर को केवल दलितों एवं पिछडों के मसीहा तथा भारतीय संविधान निर्माता के रुप प्रस्तुत किया जाता है। यहाँ हमारे लिए यह जानना बेहद ही जरुरी है कि डॉ. अम्बेडकर एक महान अर्थशास्त्री थे। स्नातक से लेकर पीएच. डी. तक की पढ़ाई उन्होंने अर्थशास्त्र विषय पर की। अर्थशास्त्र विषय पर उनका शोध अनोखा एवं सराहनीय है। यह अलग बात है कि उन्हे एक अर्थशास्त्री के रुप् में पहचान नही मिली क्योंकि 1923 में भारत लौटने के बाद डॉ. अम्बेडकर देश में व्याप्त सामाजिक एवं राजनैतिक समस्याओं (जो कि हम सभी जानते हैं) को प्राथमिकता देकर उनमें सुधार करने की कोशिश की। इसके बाद डॉ. अम्बेडकर अर्थशास्त्र विषय तथा आर्थिक मुद्दों पर अपना शोध जारी नहीं रख पाए ओर देश में उपस्थिति सामाजिक और राजनैतिक कुरीतियों को समाप्त करना जरुरी समझा। डॉ. अम्बेडकर ने भारतीय मुद्रा (रुपये) की समस्या, महंगाई तथा विनिमय दर, भारत का राष्ट्रीय लाभांश, ब्रिटिश भारत में प्रांतीय वित्त का विकास, प्राचीन भारतीय वाणिज्य, ईस्ट इंडिया कम्पनी का प्रशासन एवं वित्त, भूमिहीन मजदूरों की समस्या तथा भारतीय कृषि की समस्या जैसे महत्वपूर्ण विषयों पर शोध किया, उन्होंने सिर्फ शोध ही नहीं किया बल्कि इन मुद्दों से सम्बंधित समस्याओं के तार्किक एवं व्यावहारिक समाधान भी दिए। 20वीं सदी के शुरुआत में विश्व के लगभग सभी प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने डॉ. अम्बेडकर के अर्थशास्त्र विषय तथा आर्थिक मुद्दों का डॉ. अम्बेडकर के जीवन में एम महत्वपूर्ण टिप्पणी की। अर्थशास्त्र विषय तथा आर्थिक मुद्दों का डॉ. अम्बेडकर के जीवन में एक महत्वपूर्ण स्थान था। अपने विद्यार्थी जीवन से ही वे अर्थशास्त्र विषय से प्रभावित थे। डॉ. अम्बेडकर ने सन 1913 में बॉम्बे के एलिफिन्स्टन कॉलेज से अर्थशास्त्र को मुख्य विषय रखकर स्नातक की पढ़ाई पूरी की। डॉ. अम्बेडकर की प्रतिभा को पहचानते हुए बड़ोदा के महाराजा ने उनकी विदेश की पढ़ाई के लिए छात्रवृत्ति प्रदान किया जिसकी वजह से वे सन 1915 में कोलंबिया यूनिवर्सिटी से अर्थशास्त्र विषय प्राचीन भारतीय वाणि ाज्य था, जो मि प्राचीन भारतीय वाणिज्य के प्रति उनकी समझ को दर्शाता है। इसी थीसिस में उन्होंने "ईस्ट इंडिया कंपनी के प्रशासन एवं वित्त" नामक लेख प्रकाशित की। सन 1917 में कोलंबिया यूनिवर्सिटी ने उन्हें पीएच.डी. की उपाधि दी। उनकी पीएच.डी. थीसिस वाकई में एक ऐतिहासिक शोध था। सन 1918 से 1920 तक डॉ. अम्बेडकर बॉम्बे के सिडनहम कॉलेज में राजनैतिक अर्थशास्त्र

डॉ. अम्बेडकर ने भारतीय मुद्रा (रुपये) की समस्या, महंगाई तथा विनिमय दर, भारत का राष्ट्रीय लाभांश, ब्रिटिश भारत में प्रांतीय वित्त का विकास, प्राचीन भारतीय वाणिज्य, ईस्ट इंडिया कम्पनी का प्रशासन एवं वित्त, भूमिहीन मजदूरों की समस्या तथा भारतीय कृषि की समस्या जैसे महत्वपूर्ण विषयों पर शोध किया, उन्होंने सिर्फ शोध ही नहीं किया बल्कि इन मुद्दों से सम्बंधित समस्याओं के तार्किक एवं व्यवहारिक समाधान भी दिए।

के प्रोफेसर रहें। बतौर प्रोफेसर उन्होंने अपने विद्यार्थियों को भारतीय अर्थव्यवस्था की सभी आर्थिक समस्याओं से सम्बंधित मुद्दों को समझाया एवं इनके व्यवहारिक समाधान भी बताया। आर्थिक समस्यओं के प्रति सोंच व्यवहारिक थी, वे मानते थे कि भारत के पिछड़ेपन का मुख्य कारण भूमि व्यवस्था के बदलाव में देरी था, इसका समाधान लोकतांत्रिक समष्ठिवाद है जिससे आर्थिक कार्यक्षमता एवं उत्पादकता में वृद्धि होगी तथा ग्रामीण अर्थव्यवस्थ का कायापलट संभव होगा। डॉ. अम्बेडकर आर्थिक एवं सामाजिक असमानता पैदा करने वाली पूंजीवादी व्यवस्था को खत्म करने की वकालत करने वालों में से एक थे। सन 1920 में डॉ. अम्बेडकर बॉम्बे के कॉलेज से प्रोफेसर के पद को छोड़कर अपनी पढ़ाई के लिए लन्दन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स गए, वहां उन्होंन एम एस सी इकोनॉमिक्स. की पढ़ाई 1921 में पूरी की। उनकी एम.एस.सी. की थीसिस 'प्रोविंशियल डिसेंट्रलाइजेशन ऑफ इम्पिरियल फायनेन्स इन ब्रिटिश इण्डिया' को लन्दन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स में स्वीकार की गई। यह ब्रिटिश साम्राज्यवाद वित्त व्यवस्था पर इकलोता गहन शोध था। इस शोध के माध्यम से डॉ. अम्बेडकर वित्तीय विकेंद्रीकरण की अवधारणा का प्रतिपादन किया। उनका मानना था कि वित्तीय विकेंद्रीकरण से सभी प्रांत को लाभ होगा। आज के समय में भी उनके शोध का महत्व उतना ही है जितना कि ब्रिटिश शाषण के दौरान था, आज भी विकेंद्रीकरण के वकालत करने वाले बुद्धिजीवी केंद्र-राज्य वित्त बटवारे के मामले में राज्यों को वित्त की स्वायत्तता देने की मांग करते हैं। सन 1923 में वे लन्दन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स से ही डी.एस. सी इकोनॉमिक्स की डिग्री प्राप्त कीं अपने डी.एस.सी. की थीसिस 'द प्रॉबल्म ऑफ द रूपी इट्स ओरिजिन एण्ड इट्स सोल्युशन' में उन्होंने रुपए के अवमूल्यन की समस्या पर शोध किया, जो कि उस समय के शोधों में सबसे व्यवहारिक तथा महत्वपूर्ण शोध था, जो कि आज के समय भी भारतीय अर्थव्यवस्था पर लागू होता है। उन्होंने रुपए के अवमूल्यन होने के कारणों को समझा तथा इसके अवमूल्यन रोकने के उपाय भी बताया। डॉ. अम्बेडकर का यह काम एक शिक्षाप्रद ग्रन्थ है, उन्होंने लिखा कि टकसालों का समापन से अर्थव्यवस्था में आंतरिक मूल्य स्तर में गड़बड़ी तथा मुद्रास्फीति को रोकना संभव है। उन्होंने माना कि सोने को मूल्य का मानक होना चाहिये और मुद्रा की लोच इसी पर निर्भर होना चाहिए। डॉ. अम्बेडकर द्वारा किये गए शोध आज के समय के लिए भी उपयुक्त है। वर्तमान समय में भारतीय अर्थव्यवस्था की सभी सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं जैसे गरीबी, बेरोजगारी, महंगाई, पिछड़ापन, असमानता (व्यक्तिगत एवं क्षेत्रीय), विदेशी मुद्राओं के मुकाबले भारतीय मुद्रा (रुपए) का अवमूल्यन आदि का समाधन डॉ. अम्बेडकर के आर्थिक शोधों पर देखा जा सकता है। डॉ. अम्बेडकर भारतीय अर्थव्यवस्था को एक न्यायसंगत अर्थव्यवस्था के रुप में स्थापित करना चाहते थे, जिसमें समानता हो, गरीबी, बेरोजगारी और मंहगाई खत्म हो, लोगों का आर्थिक शोषण न हो तथा सामाजिक न्याय हो। यदि डॉ. अम्बेडकर अर्थशास्त्र को अपना कैरियर बनाया होता तो वे आज विश्व के दस प्रसिद्ध अर्थशास्त्रियों में से एक होते। □

(लेखक दिल्ली विश्वविद्यालय के दयाल सिंह कालेज में प्राध्यापक हैं।)

अपने लेख हमें ईः मेल करें

सामाजिक न्याय संदेश में
बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर पर शोधपरक
गंभीर व विश्लेषणात्मक लेख, कविताएं, कहानियां, आदि रचनाएं और दलित साहित्य व दलित विमर्श पर सामग्री। हमें अपने लेख और पत्र ईः मेल करें, ईः मेल करने के लिए वॉकमैन चाणक्य (Walkman-chankya-905) फोंट का इस्तेमाल करें। और वर्ड ओपन फाईल editorsnsp@gmail.com अथवा hilsayans@gmail.com पर भेजें। रचनाओं के मौलिक, अप्रसारित व अप्रकाशित होने का प्रमाण पत्र भी संलग्न करें।

-सम्पादक
सामाजिक न्याय संदेश
15, जनपथ नई दिल्ली-110001
टेलीफोन न. : 011-23320589

डॉ. अम्बेडकर और उनका सामाजिक चिन्तन

▪ डॉ. सुरेश उजाला

बाबासाहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने कहा था- 'अधिकारों की सुरक्षा कानून से नहीं, बल्कि समाज की सामाजिक एवं नैतिक भावना द्वारा हुआ करती है। सामाजिक भावना यदि कानून द्वारा प्रदान किए जाने वाले अधिकारों को मान्यता देने के लिए तैयार है, तो अधिकार सुरक्षित रह सकते है, किन्तु यदि समुदाय मूल अधिकारों का विरोधी है, तो कोई भी कानून संसद या न्यायपालिका उन्हें प्रदान करने का यथार्थ आश्वासन नहीं दे सकती।, डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने दलितों की मांग को किसी हीनता और हिंसा से नहीं जोड़ा था और न ही वे अपनी बात को कहने से रुकते थे, न ही उन्होंने कभी समाज में अराजकता का पक्ष लिया। वे पढ़े-लिखे और जिम्मेदार नेता थे, और अपने काम के प्रति पूर्णतः समर्पित थे। उनका सामाजिक चिन्तन नितान्त लोकतांत्रिक ढंग का था।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर में नेतृत्व करने की अद्‌भुत क्षमता थी। उन्होंने अपने समय में सामाजिक तौर पर दलितों की समस्याओं को देश का मुख्य मुद्दा ही नहीं बनाया, अपितु उसे सार्वजनिक जीवन की मुख्य धारा का एक अटूट हिस्सा बना दिया था। उन्होंने इन समस्याओं को प्रान्तीय स्तर पर छिटपुट सामाजिक सुधारों की अपेक्षा अखिल भारतीय स्तर पर खड़ा करके पूरे विश्व के सामने समग्र भारतीय जातिबद्ध समाज को ऊपर से नीचे तक झकझोर दिया था। डॉ. अम्बेडकर ने यह भी सिद्ध करके दिखाया कि इस काम में उनके हाथ सबलतम हैं। उन्होंने ज्योतिबा फुले का अपने जीवन में बहुत सम्मान किया था।

सामाजिक परिवर्तन के आन्दोलन में सामाजिक क्रान्ति के महानायकों की अहम् भूमिका रही है। हमें मताधिकार तथा बराबरी का जो हक मिला है, उसे दिलाने के लिए समाज के महापुरुषों ने आजीवन कठिन संघर्ष किया है। इन महापुरुषों के सतत् संघर्ष की एक लम्बी श्रृंखला रही है, जिनमें गौतम बुद्ध, सन्त कबीर, संतगुरु रविदास, महात्मा ज्योतिबा फुले, नारायण गुरु, छत्रपति शाहूजी महाराज एवं बाबासाहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

डॉ. अम्बेडकर ने कहा था- "स्वतंत्रता तो हमें मिली, किन्तु भारत में समता का अभाव है। यहां के सामाजिक व आर्थिक जीवन में विषमता का बोलबाला हैं। इस विषमता को हमें शीघ्र ही मिटाना होगा।" क्योंकि जातिविहीन समाज की स्थापना करके ही समाज, प्रदेश और राष्ट्र की तस्वीर को बदला जा सकता है।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर का जन्म 14 अप्रैल, 1891 को महू छावनी, जिला इन्दौर, मध्य प्रदेश में हुआ। उनके पिता का नाम सुबेदार राम सकपाल तथा माता का नाम भीमाबाई था। वर्ष 1906 में उनका विवाह रमाबाई के साथ सम्पन्न हुआ। महाराजा बड़ौदा द्वारा मिलिट्री सेकेट्री के पद पर वर्ष 1917 में नियुक्त किए गए। अपमानित होने के कारण इन्होंने यह नौकरी छोड़ दी। अपनी बात को दलित, शोषित एवं उपेक्षित लोगों तक पहुंचाने के लिए वर्ष-1920 में *मूकनायक* मराठी साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन शुरू किया। वे ऐसे ग्रन्थ लिखकर पीछे छोड़ गये हैं, जिससे इस बात में कोई शक नहीं रह जाना चाहिए कि उनका आन्दोलन इस देश में तभी समाप्त होगा, जब अस्पृश्यता का बीज नाश हो जाएगा और दलितों को बराबरी का हक मिल जाएगा।

डॉ. अम्बेडकर के जीवन संघर्ष और उनके साहित्य तथा दर्शन को देखने से पता चलता है कि दलितों का उनसे बढ़कर कोई हमदर्द नहीं था। उन्होंने जिस वर्ग की लड़ाई अपने हाथों में ली थी, वह पिछले दो हजार वर्षों से अधिक समय से सोया हुआ था। ऐसे मूक और गूंगे समाज का सशक्त नेतृत्व बहुत मुश्किल काम था। डॉ. भीमराव अम्बेडकर को नेतृत्व हेतु अपनी जनता से शक्ति नहीं मिल रही थी, फिर भी वे उसे शक्ति और दिशा दोनों दे रहे थे। डॉ. अम्बेडकर ने दलितों के आन्दोलन को हर क्षेत्र में अति उच्च स्तर पर लाकर खड़ा कर दिया था। गहन अध्ययन और विश्लेषण के बाद उन्होंने बौद्ध धर्म ग्रहण किया। वर्ष-1956 में प्रकाशित महानतम पुस्तक 'द बुद्धा एण्ड हिज धम्मा' लिखी, जो बौद्ध-बाइबिल कही जाती है। वर्ष-1936 में उन्होंने "एनिहिलेशन आफ कास्ट" लिखी। वर्ष-1946 में 'हू वर शूद्राज? हाउ दे कम टू बी द फोर्थ वर्णा इन इन्डो-आर्यन सोसाएटी', और वर्ष-1948 में 'द अनटेचेबल्स-हू वर दे एण्ड व्हाई दे बिकेम अनटचेबल्स?' नामक खोजपूर्ण पुस्तकें लिखी थीं। महाराष्ट्र सरकार ने उनकी अप्रकाशित पुस्तकों के जो भाग प्रकाशित किए हैं, उनका पांचवां भाग

पुनः अछूतों पर है। एक अन्य अप्रकाशित पुस्तक 'अनटचेबल्स आर द चिल्ड्रन इंडियाज घेट्टो' संकलित है, जो उनके सामाजिक चिन्तन का हिस्सा था।

सामाजिक सुधार और धार्मिक आन्दोलनों के रूप में डॉ. अम्बेडकर ने वर्ष-1927 में महाड के चाबदार नामक तालाब से पानी पिया था। वर्ष-1930 में नासिक के काला राम मंदिर में दलित प्रवेश का बिगुल बजाया। इस मंदिर में प्रवेश का सत्याग्रह 4 वर्ष-1935 तक चलता रहा। शिक्षा के क्षेत्र में डॉ. अम्बेडकर ने 'पीयूला एजुकेशन सोसाइटी' बनाकर स्कूल और कॉलेजों की भरमार कर दी थी। वर्ष-1953 में डॉ. अम्बेडकर ने महाराष्ट्र के औरंगाबाद में मिलिन्द महाविद्यालय की नींव रखी और वर्ष-1953 में बम्बई में सिद्धार्थ कॉलेज आफ कॉमर्स एण्ड इकोनोमिक्स की स्थापना की थी और जून 1956 में बम्बई में सिद्धार्थ लॉ कालेज खड़ा कर दिया था। और इन सबसे महत्वपूर्ण बात थी दलितों की समस्याओं का राजनीतिकरण। इसके अलावा डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने माह अप्रैल वर्ष-1942 में शेड्यूल्ड कास्ट फेडेरेशन और वर्ष 1956 में रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया की स्थापना की।

डॉ. अम्बेडकर का संसार के सामाजिक जीवन में मानवीय स्तर पर जबर्दस्त योगदान था। उनके चिन्तन की इतनी बड़ी छलांग थी, जो दुनिया की उठती हुई दूसरी गरीब कौमों के लिए एक अनूठी मिसाल थी। अमरीका के नागरिक होते हुए भी नीग्रो जनता को वोट देने का अधिकार बहुत बाद में मिला था। डॉ. अम्बेडकर के सामाजिक चिन्तन में प्रजातंत्र और अनेकवाद दोनों का महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि प्रजातंत्र में अनेकवाद ही एक न्यायोचित जीवन पद्धति है। जिसमें सम्मान तथा चुनाव की स्वतंत्रता सुलभ हो सकती है, अनेकवाद का अर्थ-साथ रहना और सामान्य संबंधों को स्थापित करना। यही अर्थ लोकतंत्र का भी है। यही कारण है कि डॉ. अम्बेडकर ने अनेकवाद और लोकतंत्र को अपने दर्शन तथा सामाजिक चिन्तन का मुख्य मुद्दा बनाया।

डॉ. अम्बेडकर ने आजीवन संघर्ष कर दलित, शोषित और उपेक्षित लोगों के उद्धार के लिए 26 जनवरी 1950 को देश में लोकतंत्रात्मक शासन प्रणाली बनाकर तथा बालिग मताधिकार का प्रावधान बनाया। डॉ. अम्बेडकर ने भारतीय संविधान बनाते समय अन्य पिछड़ा वर्ग के हितों का पूरा-पूरा ध्यान रखा और अनुच्छेद 340 के तहत उनके पिछड़ेपन को दूर करने की व्यवस्था दी। मंडल कमीशन के तहत पिछड़े वर्ग के लोगों को जो भी आरक्षण एवं अन्य सुविधाएं मिल रही हैं, यह सब संविधान के अनुच्छेद 340 की ही देन है। वर्ष 1951 में हिन्दू कोड बिल पास न होने के कारण उन्होंने मंत्रिमंडल से त्याग पत्र दे दिया था तथा 14 अक्टूबर, 1956 को नागपुर में बौद्ध धर्म की दीक्षा ली। 6 दिसम्बर 1956 को अपने निवास 26 अलीपुर रोड, नई दिल्ली में परिनिर्वाण को प्राप्त हुए थे।

उनके व्यक्तित्व, कर्तव्य और सामाजिक चिन्तन को अच्छी तरह समझने के लिए उनके शोधपूर्ण ग्रन्थों, महत्वपूर्ण लेखों तथा सारगर्भित भाषणों को सही ढंग से अध्ययन करने की आवश्यकता है।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर समाज के सभी अन्यायपूर्ण और दमनकारी लोगों के विरुद्ध विद्रोह के प्रतीक मात्र नहीं, अपितु भारतीय समाज में उभर रही नवचेतना तथा बहुजन जागृति के एक महान मसीहा के रूप में प्रतिष्ठित हैं। बहुमुखी प्रतिभा के धनी शोषित-दलित-पिछड़ों के सामाजिक उद्धार हेतु जीवन भर संघर्षरत रहे। अनेक अवरोधक तत्वों का सामना किया तथा सामाजिक-आर्थिक अन्याय एवं अत्याचार से पीड़ित मानवता के हिमायती और उद्धारक के सजीव मार्गदर्शक के रूप में डॉ. अम्बेडकर को व्यापक मान्यता प्राप्त हुई। उनके व्यक्तित्व, कर्तव्य और सामाजिक चिन्तन को अच्छी तरह समझने के लिए उनके शोधपूर्ण ग्रन्थों, महत्वपूर्ण लेखों तथा सारगर्भित भाषणों को सही ढंग से अध्ययन करने की आवश्यकता है। डॉ. भीमराव अम्बेडकर का अटूट विश्वास था कि शिक्षा के द्वारा ही उपेक्षित एवं शोषित वर्ग प्रगति एवं उन्नति में सहभागी हो सकता है। जन-जागृति की दिशा में, सामाजिक क्रान्ति के लिए डॉ. अम्बेडकर ने अपने चिन्तन और साहित्य के माध्यम से कालजयी प्रभाव अंकित किया, जिसे जानना हम सब भारतीयों के लिए हितकर है।

डॉ. अम्बेडकर ने भारतीय समाज का ऐतिहासिक प्रसंग में अध्ययन किया और उसके कार्य-कारण संबंधों की खोज की। उन्होंने समाज का तथ्यपरक वर्णन किया और यह परीक्षा भी की कि सामाजिक संबंधों में न्याय तथा सामाजिक उपयोगिता कहां तक मिलती है। डॉ. अम्बेडकर ने भारतीय समाज-व्यवस्था का अध्ययन स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व की कसौटी को दृष्टि में रख कर किया है। एक सामाजिक चिन्तक के रूप में डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने भारत की सामाजिक स्थिति का व्यापक एवं बेबाक तथ्यपरक विश्लेषण किया और साथ ही कारण भी खोजा और निवारण भी बताया।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर का संपूर्ण जीवन मानवाधिकारों के प्रति समर्पित और चिन्तन पूर्णतः मानवीय मूल्यों पर आधारित रहा। □

(लेखक उत्तर प्रदेश मासिक के सम्पादक हैं।)

दलित साहित्य आंदोलन की महत्ता और सार्थकता

▪ डॉ. राम चंद्र

समकालीन संदर्भों में दलित साहित्य का एक खास अर्थ है। दलित साहित्य को तभी समझा जा सकता है जब 'दलित' शब्द के आशय को ठीक से समझा जाए। दलित चेतना और दलित आंदोलन की पृष्ठभूमि तथा इसके मूल में मौजूद वैचारिकी को जाना जाए। जनमानस और मीडिया की दृष्टि में दलित शब्द भारतीय समाज के वंचित एवं हाशिए की जातियों-उपजातियों की सामुदायिक पहचान के रूप में भले ही जाना जाता हो, लेकिन ऐतिहासिक सच यह है कि दलित विमर्श एवं साहित्य के संदर्भ में दलित शब्द स्वयं में चेतना का प्रतिरूप है। यह सिर्फ किसी विशेष जाति-उपजाति से संबद्ध न होकर सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक अधिकारों की प्राप्ति हेतु अम्बेडकरवादी एवं अन्य परिवर्तनकामी विचारधारात्मक वर्गों के संघर्ष का प्रतीक है। भारत की सामाजिक-धर्मिक-सांस्कृतिक व्यवस्था की संरचना में उपेक्षित, अपमानित, प्रताड़ित और अधिकारों से वंचित वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाला दलित शब्द सामाजिक परिवर्तन और सामाजिक न्याय की आकांक्षा का पर्यायवाची बन चुका है। असमानता, अन्याय, ऊंच-नीच, अस्पृश्यता तथा उत्पीड़न की शिकार वे सभी जातियां जो हिन्दू-व्यवस्था के भीतर और बाहर चिन्हित की गई हैं, के वर्ग-समूह को दलित के रूप में आज पहचान मिली है। इसका ऐतिहासिक महत्व यह है कि दलित शब्द संबंधित वर्ग द्वारा अपना स्वयं का चेतनागत (सचेतन)चुनाव है; जो इतिहासबोध से गहरे तक जुड़ा है। दलित पहचान से भिन्न दूसरे वर्ग, जाति, समुदाय या व्यक्ति द्वारा विहित अतिशूद्र, पंचमा, चांडाल, अंत्यज, अछूत, अस्पृश्य तथा हरिजन जैसे शब्दों को नकारकर दलित शब्द प्रचलन में आया है। निष्कर्षतः यह शब्द हिस्सेदारी और मानवीय अधिकारों की मांग एवं संघर्ष का प्रतीक बन चुका है। साथ ही तमाम जातियों-उपजातियों में विभाजित समाज का वर्ग समूह बनने की ओर अग्रसर है। भारत या भारत से बाहर विभिन्न धर्मो और समुदायों में भी जो वर्ग सामाजिक रूप से उपेक्षित, अधिकार एवं समानता से वंचित हैं वे सभी का एक वर्ग समूह बन रहा है। दलित शब्द सभी उपेक्षित अस्मिताओं को एकसूत्र में जोड़कर सामूहिकता का बोध कराता है। पड़ताल करने पर आप पाएंगे कि आज अंतर्राष्ट्रीय पटल पर जाति, नस्ल, समुदाय तथा हाशिए के अन्य लोगों के समान अधिकारों की लड़ाई और किसी भी प्रकार के भेदभाव के विरोध एवं संघर्ष में दलित सहयोगी शब्द का स्थानापन्न बना है। यह शब्द समतावादी आंदोलन का प्रतिफलन है जिसका मूल आधार फुले और डॉ. अम्बेडकर का दर्शन एवं उनका संघर्ष है। सामूहिकता और एकसूत्रता में बांधने का विकल्प बनकर दलित शब्द ऐतिहासिक अर्थ ग्रहण कर रहा है। यह शब्द आंदोलन का प्रतीक बनकर स्थापित हुआ है जिसका गहरा संबंध 'दलित चेतना' से है। दलित चेतना की निर्मिति का प्राथमिक बिन्दु है आत्मसम्मान, गरिमा और मौलिक अधिकारों की प्राप्ति; जो महात्मा ज्योतिबा फुले और

ऐतिहासिक सच यह है कि दलित विमर्श एवं साहित्य के संदर्भ में दलित शब्द स्वयं में चेतना का प्रतिरूप है। यह सिर्फ किसी विशेष जाति-उपजाति से संबद्ध न होकर सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक अधिकारों की प्राप्ति हेतु अम्बेडकरवादी एवं अन्य परिवर्तनकामी विचारधारात्मक वर्गों के संघर्ष का प्रतीक है। भारत की सामाजिक-धार्मिक-सांस्कृतिक व्यवस्था की संरचना में उपेक्षित, अपमानित, प्रताड़ित और अधिकारों से वंचित वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाला दलित शब्द सामाजिक परिवर्तन और सामाजिक न्याय की आकांक्षा का पर्यायवाची बन चुका है।

बाबासाहेब डॉ. बी. आर. अम्बेडकर के विचार एवं दर्शन पर आधारित है। भारतीय समाज में व्याप्त विषता, अन्याय, घृणा, अत्याचार और शोषण के विभिन्न रूपों को समाप्त कर समता, स्वतंत्रता, बंधुत्व एवं करुणा की स्थापना दलित चेतना का केन्द्रीय स्वर है जो बौद्ध दर्शन से प्रेरणा और ऊर्जा ग्रहण करता है। दलित चेतना का एक अर्थ 'मैं कौन हूं ?', 'मेरे अधिकार क्या हैं?' से भी है जो अस्मिताबोध में रूपांतरित होता है। हिन्दू सामाजिक व्यवस्था में थोपे गए हीनता-बोध की छवि को तोड़ना दलित चेतना का अहम हिस्सा और कर्तव्य है। समकालीन अर्थों में जाति-पांति, ऊंच-नीच, छुआछूत, लिंगभेद, भाग्य-भगवान, कर्मकांड, पुनर्जन्म स्वर्ग-नरक, पाखंडवाद, पुरोहितवाद, अंधविश्वास, शोषण के विविध रूप तथा अन्य ब्राह्मणवादी वर्चस्व का दलित चेतना विरोध करती है। दलित साहित्य में दलित चेतना का यही मुख्य आधार और प्रमुख स्वर है जो यथास्थितिवाद को नकारकर नवीन मानदंडों और नवीन सौन्दर्यबोध में रूपांतरित होता है।

दलित चेतना की पृष्ठभूमि में दलित आंदोलन की ऐतिहासिक भूमिका रही है। दलित आंदोलन को पुख्ता आधार देने का कार्य डॉ. अम्बेडकर ने किया। उनका संपूर्ण जीवन ही दलित आंदोलन का प्रतिरूप है; लेकिन बाबासाहेब से पूर्व बौद्ध दर्शन, संत आंदोलन, फुले दम्पति का जीवन-संघर्ष, गुरु घासी दास, नारायण गुरु, अछूतानंद, पेरियार, चांद गुरु, मंगूराम आदि अन्य परिवर्तनकामी संघर्षशील गुरुओं और महापुरुषों के संघर्ष और उनकी दृष्टियों ने चेतना की रोशनी का संचार किया। ज्योतिबा फुले ने अपनी पत्नी सावित्री बाई के साथ पहली बार 1848 ई. में महिलाओं के लिए एवं 1851 ई. में पहली बार अछूतों के लिए स्कूल खोला तथा 'सत्यशोधक समाज' के द्वारा परिवर्तन की नई राह शुरू की। डॉ. अम्बेडकर द्वारा 1927 में महाड़ आंदोलन एवं मनुस्मृति दहन, 1930-31 में नासिक का कालाराम मंदिर प्रवेश सत्याग्रह, 1930 में लंदन के प्रथम गोलमेज परिषद में दलितों के राजनैतिक अधिकारों की मांग, 1942 में नागपुर में 'शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन' के गठन के समय 30 हजार दलित महिलाओं की मौजूदगी में 'दलित महिला फेडरेशन' की स्थापना तथा 1945 में मुम्बई में सिद्धार्थ कॉलेज एवं औरंगाबाद में मिलिन्द कॉलेज की स्थापना और 'शिक्षित बनो, संघर्ष करो, संगठित हो' का संदेश ने दलित चेतना की वैचारिकी को आधारभूमि प्रदान किया। अपने जीवन काल में डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रकाशित एवं संपादित पत्रों-मूकनायक, जनता, प्रबुद्ध भारत आदि के माध्यम से दलित चेतना को ऊंचाई मिली और दलित लेखन की नींव भी रखी। भारतीय संविधान के प्रारूप समिति के अध्यक्ष के रूप में डॉ. अम्बेडकर ने दलित वर्गों के संवैधानिक अधिकारों को सुनिश्चित कर दलित चेतना का मार्ग प्रशस्त किया। 14 अक्टूबर 1956 को डॉ. अम्बेडकर की बौद्ध धम्म की दीक्षा और 22 प्रतिज्ञाओं से दलित चेतना की विकास प्रक्रिया को गति मिली, जिससे दलित साहित्य आंदोलन का जन्म हुआ। 6 दिसम्बर 1956 को डॉ. अम्बेडकर के परिनिर्वाण के बाद 2 मार्च 1958 को मोरबाग, दादर मुम्बई में दलित लेखकों का प्रथम दलित साहित्य सम्मेलन, 27 नवम्बर 1967 में औरंगाबाद, महाराष्ट्र में मिलिन्द साहित्य परिषद की स्थापना, अस्मिता तथा बाद में अस्मितादर्श नामक त्रैमासिक पत्रिका का निरंतर प्रकाशन, 9 जुलाई 1972 को मराठी दलितों द्वारा 'दलित पैंथर' की स्थापना तथा 1972 में ही नामदेव ढसाल का महत्वपूर्ण काव्य संकलन 'गोल पीठा' का प्रकाशन दलित साहित्य में दलित चेतना का प्रस्थान बिन्दु है। मराठी दलित साहित्य आंदोलन का यह चेतनामयी स्वरूप कालांतर में भारत के अन्य भाषाओं में विकासमान हुआ। आज भारत की लगभग सभी भाषाओं में अम्बेडकरवादी विचारधारा को केन्द्र में रखकर दलित साहित्य लेखन हो रहा है।

21वीं सदी के वैज्ञानिक एवं तकनीकी क्रांति के दौर में भारत अभी भी समतापरक समाज नहीं बन सका है। अमानवीय और असंवेदनशील कृत्य अब तक बदस्तूर जारी हैं। भारत में अभी भी सिर पर मैला ढोने की प्रथा पूर्णतः बंद नहीं हुई है। सरकारी और गैर-सरकारी आंकड़े घृणा, हिंसा और असहिष्णुता की दास्तां बयां कर रहे हैं। भारतीय समाज की असहिष्णुता और संवेदनहीनता राष्ट्र की तरक्की में बाधक है। डॉ. अम्बेडकर ने गांव को भारतीय गणतंत्र की अवधारणा का शत्रु माना था।

दलित चेतना की पृष्ठभूमि में दलित आंदोलन की ऐतिहासिक भूमिका रही है। दलित आंदोलन को पुख्ता आधार देने का कार्य डॉ. अम्बेडकर ने किया। उनका संपूर्ण जीवन ही दलित आंदोलन का प्रतिरूप है; लेकिन बाबासाहेब से पूर्व बौद्ध दर्शन, संत आंदोलन, फुले दम्पति का जीवन-संघर्ष, गुरु घासी दास, नारायण गुरु, अछूतानंद, पेरियार, चांद गुरु, मंगूराम आदि अन्य परिवर्तनकामी संघर्षशील गुरुओं और महापुरुषों के संघर्ष और उनकी दृष्टियों ने चेतना की रोशनी का संचार किया।

उनके अनुसार ब्राह्मणवादी और पूंजीवादी व्यवस्था का जन्म भारतीय गांव में ही होता है। डॉ. अम्बेडकर का कहना है कि भारतीय गांव हिंदू-व्यवस्था के कारखाने हैं। उनमें ब्राह्मणवाद, सामंतवाद और पूंजीवाद की साक्षात अवस्थाएं देखी जा सकती हैं। उनमें स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व के लिए कोई स्थान नहीं है। भारत सरकार के गृह मंत्रालय के 'राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो 2011 के मुताबिक जिस भारत में प्रत्येक दिन 27 जातिगत अत्याचार, प्रत्येक सप्ताह 13 दलितों की हत्या, प्रत्येक सप्ताह 5 दलित घरों का जलाया जाना, प्रत्येक सप्ताह 6 दलितों का अपहरण, प्रत्येक दिन 5 दलित महिलाओं का बलात्कार, प्रत्येक दिन 11 दलितों की पिटाई और प्रत्येक 18 वें मिनट दलितों के साथ अत्याचार होता है। फिर भी साहित्य के मर्मज्ञ, आलोचक और चिंतक खामोश हैं। फुले-अम्बेडकरवादी वैचारिकी इस खामोशी को तोड़ती है और दलित साहित्य आंदोलन का मार्ग प्रशस्त करती है। भारत को यदि दुनिया के विकसित देशों की कतार में खड़ा होना है, तो सबसे पहले सामाजिक-आर्थिक विषमता को मिटाकर एक समतापरक व्यवस्था के लिए प्रतिबद्ध होना होगा। यही प्रतिबद्धता दलित साहित्य लेखन में देखी जा सकती है। दलित साहित्य का मुख्य सरोकार समतापरक समाज की स्थापना है, जातिविहीन समाज का निर्माण उसका ध्येय है। करुणा और मैत्री इस लेखन की नींव है। बंधुता और भाईचारा की स्थापना इसका सपना है। बिखरे एवं बंटे हुए समाज को जोड़ना दलित साहित्य की आकांक्षा है।

दलित साहित्य अखिल भारतीय स्वरूप ले चुका है। साहित्य की लगभग सभी विधाओं में दलित साहित्य की अभिव्यक्ति उभर कर सामने आई है। अस्मिता और आत्म-सम्मान के लिए हीनता-ग्रंथि को तोड़कर विभिन्न भाषाओं में दलित आत्मकथाएं अपने वेदनामय जीवनानुभवों के साथ उपस्थित हैं। मराठी में दया पवार की 'अछूत' (बलूत), शरण कुमार लिंबाले की 'अक्करमाशी', बेबी कांबले की 'जीवन हमारा', लक्ष्मण गायकवाड़ की 'उठाईगीर' आदि तथा हिंदी में मोहन दास नैमिशराय की 'अपने-अपने पिंजरे', ओम प्रकाश वाल्मीकि की 'जूठन', सूरजपाल चौहान की 'तिरस्कृत', कौशल्या बैसंत्री की 'दोहरा अभिशाप', डॉ. श्यौराज सिंह 'बेचैन' की 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर', डॉ. तुलसी राम की 'मुर्दहिया' और डॉ. सुशीला टाकभौरे की 'शिकंजे का दर्द' आदि आत्मकथाओं ने हिंदी क्षेत्र में स्थापित परम्परागत हिंदी साहित्य के समक्ष नई चुनौती पेश की है। ये आत्मकथाएं हीनताबोध से दलित को बाहर ला रही हैं।

कविताओं ने दलित साहित्य के सरोकार और उसके मर्म को शीर्ष पर पहुंचाया है। जाने-माने लेखक दलित कवि मोहनदास नैमिशराय ने तो ईश्वर के होने पर ही प्रश्नचिन्ह लगा दिया है। वे कहते हैं-

ꩮ *'ईश्वर की मौत*
उस पल होती है
जब मेरे भीतर उभरता है सवाल
ईश्वर का जन्म
किस मां की कोख से हुआ था ?
ईश्वर का बाप कौन ?...

ओम प्रकाश वाल्मीकि हिंदुत्ववादियों को उन्हीं का अद्वैतवाद का उदाहरण देकर पूछते हैं-

ꩮ *'चूहड़े या डोम की आत्मा*
ब्रह्म का अंश क्यों नहीं है
मैं नहीं जानता
शायद आप जानते हों!' ....

कंवल भारती लिखते हैं-

ꩮ *'क्रांति के दस्तावेज सुंदर नहीं होते*
जैसे सुबह के अखबार
जो तुम्हें गुदगुदाते हैं मीठी भाषा में...
यह बताओ
बलात्कार की शिकार
तुम्हारी मां की भाषा कैसी होगी ?'

मलखान सिंह के शब्दों में-

ꩮ *'देखो!*
बन्द किले से बाहर
झांक कर तो देखो
बर्फ पिघल रही है।
बछेड़े मार रहे हैं फुर्री
बैल धूप चबा रहे हैं
और एकलव्य
पुराने जंग लगे तीरों को
आग में तपा रहा हैं।

दलित कथा-साहित्य से दलित संवेदना की व्यापकता को समझा जा सकता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय, डॉ. प्रेमशंकर, सूरजपाल चौहान, डॉ. सुशीला टाकभौरे, डॉ. जय प्रकाश कर्दम, डॉ. श्यौराज सिंह 'बेचैन', डॉ. कुसुम वियोगी, प्रेम कपाड़िया, कावेरी, विपिन बिहारी, बुद्ध शरण हंस, सत्य प्रकाश, डॉ. दयानंद बटोही, बी. एल. नैय्यर, कुसुम मेघवाल, एन.आर. सागर, सी. बी. भारती, कर्मशील भारती, नीरा परमार, तेजपाल सिंह 'तेज', उमराव सिंह जाटव, रत्न कुमार सांभरिया, रजत रानी 'मीनू', डॉ. हेमलता महिश्वर, रजनी तिलक, डॉ. अजय नावरिया, सुजाता पारमिता, डॉ. सुमित्र महरोल, डॉ. रजनी दिसोदिया, सुशीला पवार, अनिता भारती, कैलाश वानखेड़े, अमित कुमार, टेक चंद, राज वाल्मीकि, डॉ. सूरज बड़त्या, कैलाश चंद चौहान, डॉ. अजमेर सिंह काजल, डॉ. राजेश कुमार, डॉ. कौशल पंवार, पूनम तुषामड़, सुशांत सुप्रिय,

ब्रह्मानंद, दिलीप कठेरिया, अर्जुन सावेदिया आदि। इन कहानीकारों की कहानियों के माध्यम से दलित कहानी की संवेदना और सरोकारों के विविध आयाम को समझा जा सकता है- जहां वर्ण-व्यवस्था पर चोट, जाति की जड़ता की शिनाख्त, धार्मिक पाखंड एवं कर्मकांड पर प्रश्न-चिन्ह, पितृसत्ता के सवाल, जाति-उपजाति के अतंर्वरोध, प्रेम तथा आतंक से लेकर पूंजीवाद, भूमंडलीकरण, बाजारवाद और नगरीय संस्कृति के बहुविध विषयों के माध्यम से दलित कहानी के तेवर और उसकी व्यापकता को समझा जा सकता है। छपर, करुणा, मिट्टी की सौगंध, जस-तस भई सबेर, मुक्तिपर्व, थमेगा नहीं विद्रोह, उधर के लोग, जख्म हमारे, सुबह के लिए आदि दलित उपन्यासों ने दलित साहित्य के तेवर को विस्तार दिया है।

मराठी में नामदेव ढसाल, अर्जुन डांगले, दया पवार, बाबूराव बागुल, प्रज्ञा लोखंडे, केशव मे श्राम, लक्ष्मण गायकवाड़, लोकनाथ यशवंत, भुजंग मेश्राम, अभिताभ, उर्मिला पवार आदि; उड़िया में विचित्रानंद नायक, डॉ. वासुदेव सुनामी, संजय कुमार बाघ, राम चंद्र सेठी, पंजाबी में द्वारका भारती, मदन वीरा, बलबीर माधोपुरी, गुरदास राम आलम, लालसिंह 'दिल', गुरचरन सिंह राओ, कन्नड़ में सिद्दलिंगय्या, अरविंद मालगत्ती, एल हनुमंथय्या, मोगली गणेश, सुमुह होलियार, गंगाराम चंडाल, के रामय्या, इंदूधार होन्नापुर देवनूर महादेव, बरगुरु रामचंद्रप्पा, तेलगू में शिव सागर, शंबूक, मद्यूरी नगेश बाबू, एन्ड्लूरी सुधाकर, जी.विजय लक्ष्मी, एम.वेंकट, सतीश चंदर, बांग्ला में कपिल कृष्ण ठाकुर, श्यामल प्रामाणिक, अचिन्त्य विश्वास, अनिल सरकार, मंजूबाला, कल्याणी ठाकुर, मनोहर मौली विश्वास, असमी में रमला राय सरकार, पीताम्बर दास, नयन बड़ो, दिजेन काकति, हरेन्द्र कुमार मछाहारी, डॉ. श्रीधारी दुसाधा, मलयालम में तंकप्पन, कवियूर मुरली, राघवन अत्तोली, एम.आर रेणु कुमार, एम.बी.मनोज कुमार, मेरली के. पुन्नूस, श्रीजा.ए.एस, नागेश बाबू, राजन कुरूमशेरी, तमिल में मीना कांदा स्वामी, सुगीर्थ रानी, अन्बादवन, इदयवेंदन, गुजराती में दलपत चौहाण, नीरव पटेल, जयंत परमार, प्रवीण गढ़वी, हरीश मंगलम, मधुकांत कल्पित, प्रियंका कल्पित, जोसेफ मैकवान आदि नाम प्रमुख हैं।

विश्व दलित साहित्य-सम्मेलनों का आयोजन तथा विदेशों में उक्त विषय पर शोध इस बात का परिचायक है कि दलित साहित्य की प्रासंगिकता कैसे बढ़ रही है। कनाडा के टोरंटो विश्वविद्यालय में 'जूठन' और अन्य दलित कृतियों पर शोध चल रहा है। राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न भाषाओं में दलित रचनाकारों का वृहद् समूह बन चुका है। दलित रचनाकारों की अपनी पहचान स्थापित हो रही है।

इतना ही नहीं, दलित साहित्य की छाया अब दलित पेंटरों की कूंचियों में भी सामने आने लगी है, जिन्होंने डॉ. अम्बेडकर के संघर्ष एवं उनके उसूलों को ही अपनी कला का माध्यम बनाया है। ऐसे पेंटरों में प्रदीप रामटेके तथा सवी सावरकर प्रमुख हैं। प्रदीप रामटेके ने गौतम बुद्ध तथा डॉ. अम्बेडकर को ही अपनी पेंटिंग का आधार बनाया है। अनेक राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय सम्मानों से सम्मानित रामटेके ने अजन्ता का एक मुराल तैयार किया है। अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त दलित पेंटर सवी सावरकर ने मनुवादी व्यवस्था पर पेटिंग की पूरी एक सीरियल तैयार की है जो छुआछूत के उपकरणों-झाड़ू, घड़ा, डफली आदि के साथ जाति-व्यवस्था को उजागर करती है और दलित साहित्य आंदोलन को समृद्ध कर रही है। इनकी पेंटिंग अम्बेडकरवादी वैचारिकी से गहरे रूप में जुड़ी हुई है।

इस प्रकार दलित साहित्य का स्वरूप व्यापक होता जा रहा है। विश्व दलित साहित्य-सम्मेलनों का आयोजन तथा विदेशों में उक्त विषय पर शोध इस बात का परिचायक है कि दलित साहित्य की प्रासंगिकता कैसे बढ़ रही है। कनाडा के टोरंटो विश्वविद्यालय में 'जूठन' और अन्य दलित कृतियों पर शोध चल रहा है। राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न भाषाओं में दलित रचनाकारों का वृहद् समूह बन चुका है। दलित रचनाकारों की अपनी पहचान स्थापित हो रही है। कविता, कहानी, उपन्यास, आत्मकथा, नाटक, एकांकी, आलोचना, पत्रकारिता, संस्मरण आदि विधाओं पर दलित रचनाकारों की निरन्तर लेखनी चल रही है। इससे स्पष्ट होता है कि दलित चिंतन ने सुव्यवस्थित आंदोलनधर्मिता के साथ साहित्य में दस्तक दी है। भारत के अधिकतर विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में दलित साहित्य पढ़ाया जा रहा है। लगभग दो सौ से भी अधिक दलित रचनाओं और रचनाकारों पर शोध हो चुके हैं। इससे दलित साहित्य आंदोलन की महत्ता और सार्थकता का अंदाजा लगाया जा सकता है। □

(लेखक भारतीय भाषा केन्द्र भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान, जे.एन.यू. में सहायक प्राध्यापक है।)

किसानों एवं श्रमिकों के मसीहा बोधिसत्व डॉ. अम्बेडकर

▪ सी.एस.भंडारी

किसान एवं डॉ. अम्बेडकर–भारत के सारे नेता किसान होकर भी किसानों की गरीबी उनका शोषण तथा उन्नति पर कोई ध्यान नहीं देते थे। क्योंकि वे जमीदारों व खोतेदारों से मिले होते थे। बाबासाहेब सदैव खेत, खलिहानों तथा मिल की चिमनियों की तरफ ही देखते थे। बाबासाहेब चाहते थे कि देश का उत्पादन बढ़े, शोषण बन्द हो, किसानों को करों से मुक्ति मिले तभी किसान सम्पन्न होगा देश का उत्पादन बढेगा, तो देश विकास करेगा। किसान के खुशहाल होने से देश का उत्पादन बढ़ने पर ही किसान की उन्नति से देश विकसित हो सकेगा। किसानों का शोषण हो रहा था परन्तु सभी अंग्रेजी सरकार से कुछ कह नहीं सकते थे। डॉ. अम्बेडकर जी ने किसानों की समस्याओं को सुना उन्होंने 18 फरवरी 1927 को बम्बई लेजिस्लेटिव कोंसिल के सत्र में सरकार की श्रमिक व किसान विरोधी नीतियों का खुलकर विरोध किया। उन्होंने कहा कि भूराजस्व सभी से लिया जाता है चाहे वे जमींदार हो या किसान। बाबासाहेब बम्बई में किसान मोर्चा बनाया तथा किसान के शोषण समाप्त करने का कार्य करने लगे। किसानो ने जलूस निकाले, हजारों की संख्या में किसान सड़कों पर उत्तरे तथा आवाज को बुलन्द किया। 'खोती प्रथा बन्द करो' के नारों से आकाश गुंजायमान था। तपती धूप में लोग सड़कों पर जमे रहे। डॉ. अम्बेडकर जी की अध्यक्षता में मुख्य मंत्री से मिले तथा अपनी मांगे रखी (1) खेती हर मजदूरों की मजदूरी (न्यूनतम) तय की जाये (2) लगान की बकाया तथा लगान में छुट दी जाय। (3) खोती प्रथा तथा इनामदार प्रथा व जमींदारी प्रथा को समाप्त किया जाये तथा समाप्त करने का कानून बनाया जाये। (4) सिंचाई करने में पचास प्रतिशत की छूट दी जाये। राजनीति में विशाल तूफान आ गया। क्योंकि इस कार्य की सफलता से विरोधी भी घबरा गये। उन्होंने सोचा कि कहीं डॉ. अम्बेडकर ही किसानों, भूमिहीनों,तथा श्रमिकों के नेता न बन जायें।

(1) प्रथम विधेयक-खोती प्रथा बन्द करने का प्रस्ताव - डॉ. अम्बेडकर पहले विधायक थे जिन्होंने खोती प्रथा बन्द करने के लिए 17 सितम्बर 1937 को बम्बई विधान सभा में विधेयक प्रस्तुत किया जो खातेदार किसानों की दासता को समाप्त करना था।

(2) किसान मजदूर संगठन - डॉ. अम्बेडकर मजदूरों व किसानों को एक होने का सन्देश देते थे इनके शोषण समाप्त करने के लिए किसान व श्रमिक मिल कर संगठन बनाये, जिससे अपनी आवाज को सरकार तक पहुंचा सके। 1938 में उन्होंने कहा था कि किसान व श्रमिक बिना भेद-भाव के अपना संगठन बनाये तथा विधान सभा में जाकर अपनी आवाज उठाये। उन्होंने बम्बई विधान सभा में बेगारी जैसी प्रथाओं पर कानूनी रोक लगवायी थी। इस आन्दोलन को बाबासाहेब पूंजीवाद व ब्राह्मणवाद से अलग रखना चाहते थे क्योंकि वे जानते थे कि पूंजीवाद तथा ब्राह्मणवाद

> डॉ अम्बेडकर ने मजदूरों की समस्याओं को करीब से देखा था। कारखानों में मजदूरों का शोषण होता था। अधिक काम के घंटे, दुर्घटना होने पर सुविधाओं का अभाव, कम वेतन, आवास चिकित्सा शिक्षा आदि की समस्याओं का सामना श्रमिक करते थे। महिलाओं का शोषण होता था। बाबासाहेब इस व्यवस्था में परिवर्तन करना चाहते थे। मजदूरों श्रमिकों, भूमिहीन कृषकों के हितों की रक्षा के लिए एक स्वतंत्र राजनैतिक पार्टी का गठन किया जिसका नाम 'इंन्डिपेंडेट लेबर पार्टी' रखा गया। उन्होंने कामगारों के रोजगार तथा कल्याण के लिए कानून बनाने का लक्ष्य बनाया था

ही आर्थिक व धार्मिक (सामाजिक) शोषण करता है। हम तभी अपना शोषण रोक सकते जब इन दोनों से दूर रहें।

(3)श्रमिक संबंधी विचार - डॉ. अम्बेडकर बम्बई में लोअर परेल स्थित चाल के एक छोटे से कमरे में रहते थे इसलिए मिल मजदूरों, की समस्याओं से अवगत थे। उनकी समस्याओं को करीब से देखा था। कारखानों में मजदूरों का शोषण होता था। अधिक काम के घंटे दुर्घटना होने पर सुविधाओं का अभाव इत्यादि समस्याओं का सामना कम वेतन, आवास चिकित्सा शिक्षा इत्यादि की समस्याओं का सामना श्रमिक करते थे। महिलाओं का शोषण होता था। वेतन भत्ता प्रसूति इत्पादि की समस्याओं से महिलाओं का शोषण किया जाता था। बाबासाहेब इस व्यवस्था में परिवर्तन करना चाहते थे। 1928-29 में मिल श्रमिकों ने हड़ताल की लम्बे समय तक यह हड़ताल चली, समाप्त नहीं हो रही थी। मजदूरों श्रमिकों, भूमिहीन कृषकों के हितों की रक्षा के लिए एक स्वतंत्र राजनैतिक पार्टी का गठन किया जिसका नाम 'इंन्डिपेंडेट लेबर पार्टी' रखा गया। उन्होंने कामगारों के रोजगार तथा कल्याण के लिए अच्छा कानून बनाने का लक्ष्य बनाया था (1) काम के घंटे तय करना (2) पदोन्नति के अवसर देना (3) वेतन निर्धारण करना (4) छुट्टियों की सुविधा (5) आवास की उपयुक्त सुविधा इत्यादि के लिए प्रभावी कानून बनाने के लिए सरकार को बाध्य करना मुख्य उद्देश्य था।

(4) श्रम नीति (श्रम कल्याण एवं श्रम सुरक्षा) - श्रमिकों की सामाजिक सुरक्षा तथा कल्याण के कानून बम्बई विधान में बनने लगे थे। रॉयल कमीशन 1925 से पहले ही डॉ. अम्बेडकर श्रमिकों के शोषण विरूद्ध लड़ने लगे थे। वे 1927 से 1939 तक बम्बई प्रोविंसियल कार्य कारिणी में सदस्य तथा 1942 से 1946 तक वायसराय की कार्य कारिणी में श्रम सदस्य के रूप में कार्य किया। इस समय इन्होंने श्रमिकों के लिए, उनके विकास के लिए शोषण समाप्त करने के लिए अनेकों कानून बनवाए। श्रम सदस्य के समय उनके अधीन एक दर्जन से अधिक विभाग थे। श्रम कल्याण और श्रमिकों की सामाजिक सुरक्षा हेतु किये गये उनके कार्य आज भी मील का पत्थर बना हुआ है। बाबासाहेब ने 26 नवम्बर 1945 को श्रम सदस्य के रूप मे बोलते हुए कहा कि ब्रिटेन में श्रम कानून बनाने में 100 वर्ष लगे परन्तु भारत में श्रम कानून की बहुत शीघ्र आवश्यकता है क्योंकि श्रम कानून न होन से देश का विकास रूक जाता है। देश में आर्थिक स्वतन्त्रता का समय आ गया है। उन्होंने श्रमिकों को भी संबोधित करते हुए कहा कि देश के विकास व कल्याण करने के लिए-संगठित होकर त्याग करना चाहिए। राष्ट्रीय उद्योगों में अधिक सहयोग करना चाहिए। परन्तु यहां उद्योग निजी है जो पूंजीपति चलाते हैं। डॉ. अम्बेडकर सभी उद्योगों का राष्ट्रीयकरण चाहते थे जिससे श्रमिकों को अधिक सुविधाएं दिला सके। लेकिन पूंजीपति श्रम कानून नहीं चाहते थे। बाबासाहेब पूरे देश में श्रम नीति एक समान बनाना चाहते थे।

बाबासाहेब ने 1944 में आह्वान किया कि संसद सदस्यों को श्रम कानून कल्याण नीति बनाते समय यह भी ध्यान रखना होगा कि अमीर (पूंजीपति) को लाभ न मिले क्योंकि दूसरे वर्ग (श्रमिक) का शोषण होगा। बाबासाहेब ने करोड़ों श्रमिकों के जीवन में उजाला भरने का कार्य किया। 7 व 8 मई 1943 को श्रम सदस्य के रूप में जो बैठक हुई उसमें श्रम कल्याण सामाजिक सुरक्षा, वेतन, तथा कल्याण आदि के संबंध में चर्चा की गयी बाबासाहेब की कड़ी मेहनत का यह परिणाम हुआ कि उन्होंने मुख्य विधयेकों को पास कराया। (1) बेरोजगार कार्यालयों की स्थापना (2) भारतीय बायलट विल 26 जुलाई 1943 (3) वाहन चालकों का पुन: नियुक्त अधिकार 29 जुलाई 1943 में (4) खान प्रसूति विधेयक (5) खान श्रमिक कल्याण (6) समान कार्य, समान वेतन (7) कोयला खानों की सुरक्षा (8) मजदूरी भुगतान विधेयक (9) सरकारी श्रम नीति का खुलासा (10) दामोदर घाटी योजना प्रस्ताव (11) औद्योगिक श्रमिकों की आवाज सुविधा पर कानून का निर्माण कराना।

(5) श्रम कानून एवं सुरक्षा में डॉ. अम्बेडकर - औद्योगिकरण के बढ़ते कदमों पर संसार में दो महत्वपूर्ण वर्ग है, पूंजीवाद तथा श्रमिकवाद जो एक दूसरे के विरोधी है। श्रम सुरक्षा एवं श्रम कल्याण को संबंध सामाजिक सुरक्षा एवं सामाजिक कल्याण से है। क्योंकि मानव कल्याण एवं मानव सुरक्षा का ही अर्थ है। श्रमिक वर्ग का कल्याण व सुरक्षा एवं श्रम कल्याण कहा जाता है इसका तात्पर्य श्रमिकों की बौद्धिक, भौतिक एवं आर्थिक उन्नति के लिए नियोजकों व सरकारी एजेंसियों द्वारा किया जाता है। 19वीं शताब्दी में औद्योगिक क्रान्ति के साथ ही श्रम कल्याण व श्रम सुरक्षा का विकास भी होता गया। यहां श्रमिकों का शोषण भी होता रहा परन्तु साथ-साथ उनके कल्याण के कार्यों में भी सुधार होता गया। 20वीं सदी में सुधार कार्य तेजी पकड़ता गया। डॉ. अम्बेडकर का आधुनिक श्रम कल्याण कार्य एवं श्रम सुरक्षा कार्य उद्योग में बेहतर एवं ज्यादा कुशल प्रबन्ध के लिए चलाये जा रहे आन्दोलन और मानवीय दृष्टिकोण का भी परिणाम है। सरकार का यही तर्क रहता था कि श्रम कानून बनाने में खर्च होता है परन्तु बाबासाहेब इस बात की तरफ ध्यान नही देते थे परन्तु सदैव प्रयास रखते थे। ब्रिटेन और भारत की श्रमिक परिस्थितियों में भिन्नता थी क्योंकि भारत में शीघ्र ही सुधार की आवश्यकता थी।

(6)अन्य कानून – ब्रिटेन सरकार लाभ तो कमाना चाहती थी परन्तु श्रमिकों के शोषण रोकने तथा उनके विकास का उत्तरदायित्व सरकार नहीं समझती थी। डॉ. अम्बेडकर ने कहा कि कार्य करने की वास्तविक स्वतन्त्रता केवल वही पर होती है जहां शोषण का समूल नाश कर दिया जाता है। एक वर्ग दूसरे वर्ग का शोषण करे, बेरोजगार होने का खतरा हो जहां गरीबी हो अपने कार्य के परिणाम स्वरूप व्यक्ति को रोजी रोटी, गंवाने का भय हो वह देश व श्रमिक कैसे विकास कर सकता है। भारत में डॉ. अम्बेडकर प्रथम ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने श्रम कानून बनबा कर देश मजदूरों व श्रमिकों को सुविधाएं दी। (1) मिलों तथा खान उद्योग में कार्य करने वाले श्रमिकों को बोनस दिलवाने का कार्य किया। (2) आठ घन्टे समय का निर्धारण (3) श्रमिकों को अवकाश, (4) महिला श्रमिकों को अपनी मांगे मनवाने पर हड़ताल व प्रदर्शन करना कोई जुर्म नहीं, अगर वो पूर्व सूचना (नोटिस) देते हैं तो दोषी नहीं है। (6) मिलों में श्रमिकों की समस्याएं होने पर श्रमिक मिल मालिक तथा सरकार मिलकर समस्याओं का समाधान करें (7) श्रम नीति के तहत श्रमिकों व खान मजदूरों व सरकारी कर्मचारियों को मंहगाई भत्ता देने का कार्य भी किया। श्रमिकों को मंहगाई भत्ते पहली बार 1942 में दिया गया था। जिसमें बढ़ोतरी भी होती गयी (8) कर्मचारियों को क्षतिपूर्ति भत्ते का तथा मुआवजा दिलाने का भी कानून बनवाया (9) बिना किसी पूर्ण जांच के कर्मचारी को नौकरी से नहीं हटाया जा सकता यह प्रावधान कराया गया। (10) विवादों के निपटारे को समाधान के लिए त्रिपक्षीय स्तर का भी प्रावधान किया।

श्रम कानून आज भी देश के विकास की आधार शिला है जो बाबासाहेब ने बनाये थे। इस प्रकार डॉ. भीम राव अम्बेडकर जी को श्रमिकों व किसानों का मसीहा कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं है। उन्होंने यह भी आह्वान किया था कि श्रमिक संगठन राजनीति से अलग रहें यूनियन नेता स्वार्थ में आ जाते हैं। जिससे ट्रडे यूनियन का राजनीतिकरण हो जाता है बेचारा श्रमिक फिर वहीं पर खड़ा रहता है। वास्तव में पूंजीवाद के बहुत लम्बे हाथ हैं जिन्हें हम देख नही पा रहे हैं। जिसके परिणामस्वरूप देश का विकास उस गति से नहीं हो रहा है जिस गति से होना चाहिए। बाबासाहेब के श्रमिकों के लिए किए गए कार्य को भारतीय इतिहास सदैव याद करता रहेगा। □

(लेखक ने 'किसानों एवं श्रमिकों के मसीहा बोधिसत्व डॉ. अम्बेडकर' पुस्तक लिखी है)

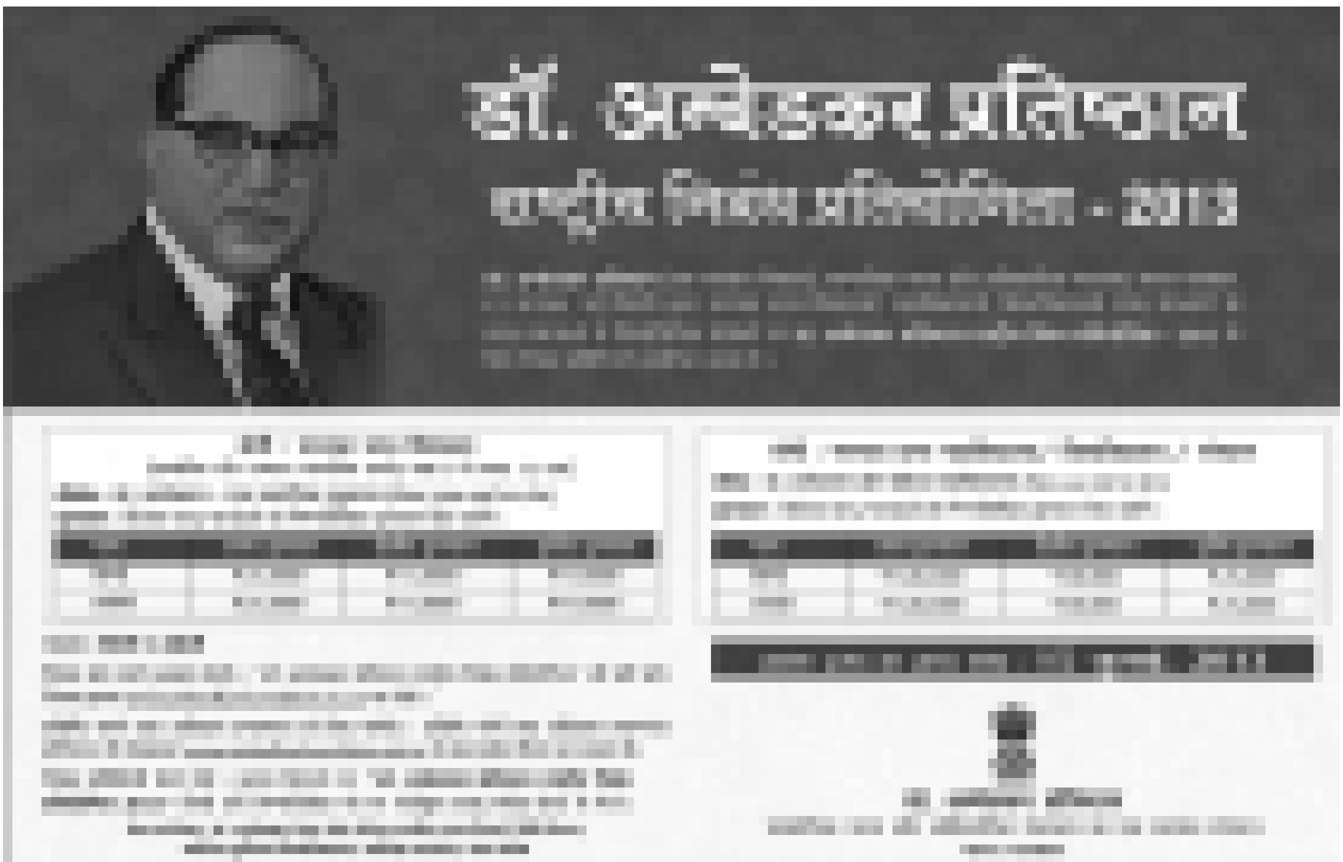

कहानी

अन्तर्कलह

■ डॉ. पूरन सिंह

जैसे ही अप्रैल का महीना शुरू होता था पूरे मुहल्ले में चारों तरफ एक ही बात सुनाई देती थी कि इस बार मेला नहीं निकाला जाएगा। कोई पूछता कि इस बार चौदह अप्रैल नहीं मनाई जाएगी? तो कोई कहता, "अरे भाई, मीटिंग करो, बाबासाहेब का जन्म दिन नहीं मनाओगे तो लोग क्या कहेंगे।" परसादी चाचा हमेशा अपने बड़े वाले घर पर बैठकर एक ही बात कहते, "अरे लड़िको! जैन्ती नहिं निकारियो का? मौल्ला की नाक कटवाइओ का?" और सभी लोग अप्रैल महीने की शुरूआत के दिनों में ही एक सामूहिक मीटिंग करते जिसमें कुछ पदाधिकारी नियुक्त किए जाते और बाबासाहेब की जयन्ती पर झांकी निकालने का कार्यक्रम निर्धारित किया जाता था। पूरा मौहल्ला खुशी से फूला नहीं समाता था। स्त्रियां, बच्चे, बड़े-बूढ़े और नौजवानों में लगता जैसे नया जीवन शुरू करने की चाह हो। स्त्रियां अपनी-अपनी छतों पर बैठकर गीत भजन गाती थीं। कुछ महिलाएं जो पुरानी विचारधारा की थीं वे राम-श्याम को लेकर गीत गाती या कबीरदास के दोहे गाती तो नई उम्र की लड़कियां फिल्मों की तर्ज पर बाबासाहेब के गाने गाती थीं। अपनी-अपनी धुन में सभी गाते बजाते थे और इसका अर्थ एक ही रहता था कि अप्रैल की 14 तारीख को बाबासाहेब की झांकी निकाली जाएगी जो पूरे कस्बे से होती हुई सदर मार्केट के बड़े दरवाजे से निकलकर हमारी पुस्तैनी या यों कहें सामूहिक धर्मशाला अर्थात् रविदास मंदिर पर आकर ठहर जाएगी और यहीं पर उसका समापन हो जाएगा।

हर वर्ष की तरह इस वर्ष भी मेला समिति का गठन किया जाना था सो पहली अप्रैल को ही एक मीटिंग बुला ली गई थी मीटिंग पिछली बैठक के पदाधिकारियों ने बुलाई थी। ऐसा नियम भी था। मीटिंग में सभी लोग इकठ्ठे हुए थे। अम्बेडकर नगर के सभी लोग और इससे जुड़े हुए बाल्मीकि नगर के सभी लोगों को मीटिंग में बुलाया जाता था। दरअसल अम्बेडकर नगर में सभी जाटव लोग रहते थे और बाल्मीकि नगर में सभी बाल्मीकि लोग रहते थे। जाटवों और बाल्मीकियों में सलाह थी अतः अम्बेडकर नगर के सभी लोग और इससे जुड़े हुए बाल्मीकि नगर के सभी लोगों को भी मीटिंग में बुलाया जाता था। दरअसल अम्बेडकर नगर में सभी जाटव लोग रहते थे और बाल्मीकी नगर में सभी बाल्मीकि लोग रहते थे। जाटवों और बाल्मीकियों में सलाह थी अतः अम्बेडकर जयंती पर सभी बाल्मीकि और बाल्मीकि जयंती पर कुछ लोग अम्बेडकर नगर से शामिल होते थे। बाल्मीकि जयंती पर कुछ लोग अम्बेडकर नगर से क्यों इकट्ठे होते थे, इसका एक कारण था। अम्बेडकर नगर के जाटवों का कहना था कि बाल्मीकि ने रामायण लिखी थी, इस तरह वे दलितों की केटैगरी में नहीं आते फिर भी कुछ लोग बाल्मीकियों का मान रखने के लिए ऐसा करते थे ताकि वे नाराज न हों और बाहर वाले लोगों अर्थात् ब्राह्मण, बनियों और चौहानों को लगता रहे कि इन सभी में एकता है। जबकि सही बात तो यह थी कि बाल्मीकि वाली बात पर जाटवों में मतभेद हो गया था। कट्टरपंथी जाटव बाल्मीकि जयंती में शामिल नहीं होते थे। बड़े बुजुर्ग हो जाया करते थे।

पहली अप्रैल 1987 में जब पदाधिकारियों के चयन के लिए अम्बेडकर नगर में एक सामूहिक बैठक बुलाई गई तो सभी लोग मौजूद थे। अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, महामंत्री, कोषाध्यक्ष और ऐसे ही अन्य पदाधिकारी नियुक्त किए गए थे। कुछ ऐसे भी लोग थे जिनसे ज्यादा से ज्यादा काम लिया जाना था और उन्हें खुश करने के लिए सदस्य बना लिया गया था। मुझे महामंत्री नियुक्त किया गया था जिसके पीछे तर्क था कि मैं उनकी नजर में खूब पढ़ा लिखा था। अंग्रेजी अच्छी बोल लेता था इतना ही नहीं सभी समाज को अपनी चिकनी चुपड़ी बातों में फंसाकर एक कर लेता था। मुझे कोई आपत्ति नहीं हुई थी।

अगले ही दिन से मैं चंदा इकठ्ठा करने निकल पड़ा था। मेरे साथ कुछ पदाधिकारी थे। सभी सदस्य थे। हम सभी शहर में घूम-घूमकर शहर के लोगों से चंदा इकट्ठा करते रहते थे। कुछ ने दिया, कुछ ने मना कर दिया था। कुछ ने कह दिया था कि तुम्हारा मेला है तुम खुद ही निकालो, तो कुछ लोग ऐसे भी थे जिन्होंने पूरे आदर सम्मान के साथ 101/ रुपए या 501/ रुपए की पर्ची भी कटवाई थी। इसी के साथ-साथ मुहल्ले से भी प्रत्येक घर से 50/ रुपए के हिसाब से चंदा वसूल किया गया था जो प्रत्येक घर के लिए अनिवार्य था। हिसाब लगाने पर पता चला कि चंदे की राशि फिर भी कम पड़ गई थी जबकि आज चंदा मांगते-मांगते एक सप्ताह हो गया था। अब क्या किया जाए। अम्बेडकर जन्म जयंती समारोह समिति के पदाधिकारी परेशान होने लगे थे। मैंने उन्हें सलाह दी थी और कहा था, "क्यों न हम

शहर के बड़े लोगों को आकर्षित करने के लिए एक तरीका ढूंढ लें। हम 14 अप्रैल वाले दिन बाबासाहेब की झांकियां निकालें और अगले दिन कोई आर्केस्ट्रा पार्टी मंगवाकर म्यूजिक का प्रोग्राम करवा लें।" शहर के रईसजादों की नस मेरे हाथ में थी। कुछ अय्याश किस्म के नए धनवानों के आवारा लड़कों को आर्केस्ट्रा का शौक था। सभी लोग मेरी बात पर सहमत हो गए थे और अगले दिन फिर चंदा लेने, जिसमें आर्केस्ट्रा का प्रोग्राम प्रमुख था, निकल पड़े थे। एक ही दिन में हजारों रुपया इकठ्ठा करके हम सभी पदाधिकारी वापस लौटे थे। धन्नी चाचा बहुत खुश थे। बार-बार एक ही बात कहते, "चन्नी के जा लड़का के दिमाग को तो कोई जवाब नाय है।" मैं खुश भी होता था और नहीं भी। दरअसल आर्केस्ट्रा से मैं खुश नहीं था, फिर भी पैसा चाहिए था। आर्केस्ट्रा में रईसों के लड़के आकर बदतमीजियां करते थे। परन्तु मेरी बेबसी थी।

पैसों का काफी इंतजाम हो गया था। अब मीटिंग में यह निश्चित किया जाना था कि कौन-कौन सी झांकिया निकाली जाए। सूबेदार चाचा हमेशा ही दो झाकियां बनाते थे।

रघुनाथ चाचा ने एक झांकी बनाने का बीड़ा उठाया था। सुरेश ने एक के लिए कहा था। दिपुआ भी एक झांकी बनाने के लिए राजी जो गया था। मैंने कहा, एक मैं बना दूंगा इस तरह छः झांकियां बनाने पर सहमति हो गई थी। तभी विक्रम ताऊ चिल्लाने लगे थे, "अरे लरिका, छः को का मतलब, सात बनाओं, सात। छः अशुभ होते हैं बेटा।" मैंने कहा था, "क्या ताऊ, आप भी, हमारे बाबा साहब की नजर में कुछ अशुभ नहीं होता। ये सभी बातें तो ब्राह्मणों को ही करने दो।" ताऊ जी ने मुझे ऐसे देखा था जैसे लील जाएंगे। बाद में मैंने उन्हें प्यार से मना लिया था।

झांकियों का एक निश्चित क्रम होता था। एक झांकी बाबा साहब के जन्म की बनायी जाती थी जिसमें कमल के फूल में किसी छोटे बच्चे को लिटाया जाता था। कमल का फूल घूमता रहता था। दूसरी झांकी संविधान निर्माता की होती थी जिसमें बाबासाहेब, भारत के संविधान को नेहरू जी और राजेन्द्र प्रसाद जी को देते दिखाए जाते थे। एक झांकी में बौद्ध भगवान होते थे जो बाबासाहेब को आशीर्वाद देते दिखाई देते थे। उनके हाथ से निकलने वाली किरणें बाबा साहे के चेहरे पर पड़ती थी। इनके अलावा और भी झांकियां होती थी जिनमें किसी में गांधी जी बनाए जाते थे। एक आदमी को गंजा किया जाता था, उसे गांधी जी बनाया जाता था। जिसे झांकी निकलने के बाद भी लोग गांधी-गांधी कहा करते थे।

इन सभी झांकियों के अलावा जो सबसे प्रमुख झांकी थी, वह एक रथ था जिस पर बाबासाहेब की बड़ी-सी फोटो रखी जाती थी और उस फोटो पर चांदर ढलने के लिए वह व्यक्ति बैठता था जो सबसे ज्यादा चंदा देता था। इस चंदे की बोली लगती थी जिसमें मोहल्ले का ही कोई व्यक्ति होता था। फिर चाहे वह बाल्मीकि नगर का हो या फिर अम्बेडकर नगर का व्यक्ति हो। अम्बेडकर नगर के कुछ चतुर जाटव उस दिन यह मीटिंग रखते थे जब बाल्मीकि नगर के बुद्धिमान और पैसे वाले लोग अपने घरों में प्रायः कम ही होते थे। वे या तो कहीं चले गए होते थे या फिर उनकी अनदेखी कर दी जाती थी। वैसे पिछले कई वर्षों से इस रथ पर दीना चाचा बैठते रहे थे। दरअसल दीना चाचा बैठते रहे थे। दरअसल दीना चाचा का मोहल्ले में दबदबा था। उनके पास धन, बल सभी कुछ था। लेकिन नियमानुसार रथ पर वही बैठ सकता था जो सबसे ज्यादा चंदा दे।

कल बोली लगनी थी। मैं अपने घर पर बैठा समिति के सदस्यों के साथ पैसों का हिसाब लगा रहा था। कल्लू कह रहा था, "भइया, इस बार तो खूब पैसा आया है और ये सब ना, ये सब ना, भइया ना आपकी वजह से हुआ है।"

"नहीं बेटा, हम सभी की वजह से हुआ है। तुम नहीं होते तो मैं अकेला क्या कर लेता" मैंने कहा था। सभी खुश थे। रात काफी होने लगी थी। धीरे-धीरे सभी सदस्य अपने घरों को जाने लगे थे। मेरे परिवार वालों के साथ मैं ही अकेला घर पर था। अम्मा-पिताजी भी सो गए थे। भइया-भाभी भी सो गए थे। तभी अचानक धीरे से किसी ने कुंडी खटखटाई थी।

"कौन है" मैं बोला था।

"किवाड़ खोलो" आवाज किसी गहरे कुएं से आकर पुनः वापस हो गई थी।

"कौन हैं आप?"

"मैं हूं, मैं पन्ना, पन्नालाल।" बाहर पन्ना चाचा खड़े थे। मैंने किवाड़ खोल दिए थे।

"अरे चाचा इतनी रात गए क्या बात है, सब ठीक तो है? चाची ठीक है?" मैंने प्रश्नों की बौछार लगा दी थी।

"सब ठीक है बेटा! मेरे पूत!! मैं तम्हारे पास एक जरूरी काम से आया हूं।" वे बोले थे।

"क्या बात है चाचा किसी ने आपको तंग किया है? पैसों की कमी है, कोई और प्रोबलम?" मैं आतुर हो उठा था।

"नहीं बेटा! नहीं कोई बात नहीं, मैं ठीक हूं।" वे आश्वस्त थे।

मैंने उन्हें अंदर बुलाया था और बड़ी श्रद्धा से बैठने को कहा था। वे अपनी दोनों बैशाखी रखकर बैठ गए थे। पन्ना चाचा की एक टांग किसी तरह कट गई थी। वे लंगड़े थे। सदर मार्केट में कोने वाली दुकान के नीचे बैठकर जूतों पर पालिश करते थे। जूतों की गठाई करते थे। सुबह साफ कपड़े

पहनकर बैठते थे जो शाम तक काले हो जाते थे। हर आदमी से 'जय भीम' करते और चाहते थे कि वह आदमी भी बदले में उनसे 'जय भीम' करे लेकिन कुछ लोग जान बूझकर 'राम-राम' करते थे और पन्ना चाचा खिसियाने लगते थे। कुछ लोग उन्हें पन्ना कहते तो कुछ लोग उन्हें पन्नालाल तो कुछ उन्हें 'गठऊआ' अर्थात् जूता गांठने वाला भी कहते थे।

"अच्छा अब बताओ चाचा कैसे आए?" मैंने प्रश्न सीधा तीर की तरह छोड़ा था।

"मैंने सुना कल रथ पर बैठने वाले की बोली लगेगी?" प्रश्न का प्रश्न की जवाब था।

"जी, चाचा जी।"

"बेटा, मेरी एक इच्छा थी।" उन्होंने मेरी आंखों में कुछ तलाशने की कोशिश की थी।

"बोलो।"

"एक बार अपनी जिन्दगी में मैं भी बाबा साहब के चरणों में बैठ लेता, बेटा फिर चाहे उसी शाम को मर जाता।" उन्होंने इच्छा जाहिर की थी।

"क्यों नहीं चाचा, जरूर बैठना और आप यह मरने की बात क्यों करते हो। आपकी इतनी श्रद्धा है बाबा साहब के लिए तो आपके रखवाले तो खुद बाबा साहब ही रहेंगे। आपको कौन मिटा सकता है चाचा।" मै। उनकी भावना को देखकर भावुक हो गया था और उन्होंने भी मेरी बात सुनकर, घिसटकर अपनी जगह से मेरा माथा चूम लिया था। "बाबा साहब करें तुम बहुत बड़े आदमी बनो।" वे लगभग रोने लगे थे। मैंने भी उन्हें बाहों में भर लिया था। मेरी श्रद्धा उनके प्रति और बढ़ गई थी।

"लेकिन एक प्रोबलम है चाचा" मैंने आशंका व्यक्त की थी।

"क्या बेटा" वे दृढ़ होकर बोले, मानो उन्हें अब तूफान भी नहीं हिला सकता था। लगा रहा था वह तो अडिग और अचल हिमालय हों और मेरे हां कहने पर इतने खुश हों कि सारे जहान की दौलत उकने कदम चूम रही हो।

"चाचा वहां बोली लगेगी और बोली ऊंची भी जा सकती है" मैंने आशंका व्यक्त की थी।

"घर बेच दूंगा। तुम्हारी चाची के गहने बेच दूंगा। खुद को गिरवी रख दूंगा, अपना ठिया बेच दूंगा। बेटा, पर एक बार मुझे उनके चरणों में बैठ लेने दो। तुम्हारा जीवन भर एहसान मानूंगा।" कहते-कहते वे हाथ जोड़कर मेरी तरफ याचक की तरह देखने लगे थे।

"चाचा, चाचा, चाचाजी, नहीं, नहीं, ऐसे नहीं करते। आप ही बैठेंगे, रथ पर आप ही होंगे। मेरा वादा है आपसे, चाहे मुझे कुछ भी करना पड़े। आप चिंता मत कीजिए।" मैं सकपका गया था। इतनी श्रद्धा तो मैंने भी बाबासाहेब की कभी नहीं की थी। मैं उनके सामने नतमस्तक हो गया था। पन्ना चाचा चले गए थे।

अगले दिन देर शाम को बोली लगना शुरू हुई। एक हजार एक, दो हजार एक, तीन हजार एक, न जाने कौन, कौन बोल रहा था। "आवाज दीना चाचा की थी।

चारों तरफ सन्नाटा छा गया था। सिर्फ हवाएं शोर मचा रही थीं। चांद आसमान से देख रहा था।

"दस हजार" पन्ना चाचा बोले थे। दस हजार एक नहीं बोला था उन्होंने, सिर्फ दस हजार। एक बार को लगा था कि फिर महाभारत शुरू या हो गया हो जहां शूरवीर कर्ण अकेला सबके सामने निडर खड़ा हो।

"पन्ना तू" दीना चाचा ने हेय नजरों से देखा था।

"जी, दीना चाचा। पन्ना चाचा हैं।" मैंने पन्ना चाचा का सारथी बनना स्वीकार लिया था।

"पैसे अभी जमा करने होंगे।" दीना चाचा ने बंदर घुड़की दी थी।

"चाचा ये तो कोई बात नहीं हुई। पैसे तो आगे पीछे भी ले लिए जाएंगे। ये मेरा काम है, आप चिंता मत कीजिए।" मैं सारथी ही बना रहना चाहता था।

"तुम नहीं जानते बेटा। इस गठऊआ ने पैसे न दिए तो" दीना चाचा सुस्त हो गए थे।

"चाचा इस तरह नहीं बोलेंगे आप। और अगर पन्ना चाचा पैसे नहीं देंगे तो आप बैठेंगे और एक भी पैसा आपसे नहीं लिया जाएगा।" मैंने उन्हें आश्वासन दिया था। तभी पन्ना चाचा ने दस हजार रुपए गिनकर सभी लोगों के सामने रख दिए थे और कोषाध्यक्ष से कहा था, "गिन लो टीकम सिंह, पैसे पूरे हैं। मैंने पूरे दस हजार रुपए दिए हैं। मैं दस हजार एक नहीं दूंगा। एक तो ब्राह्मण लगाते हैं। मैं क्यों लगाऊं। इससे हमारे बाबा साहब का आपमान होता है।"

और मैं, मैं तो उन्हें देखे जा रहा था। कुछ भी नहीं बोल पा रहा था। आसमान में चमकते चांद को देख रहा था, जो धीरे-धीरे और ज्यादा चमकदार होता जा रहा था।

"लेकिन एक बात सुनो सभी मुहल्ले वालो। अगर ये पन्ना रथ पर बैठेगा तो सभी शहर वाले यह नहीं कहेंगे कि गठऊआ को रथ पर बैठाया गया है। हो सकता है अगली बार हमें कोई चंदा भी न दें।" दीना चाचा का यह दूसरा तीर हवा में चला था।

"हो सकता है अगली बार हम मर जाएं।"

मैं खिसया कर चिल्लाया था, "कोई चंदा दे न दे। अब तो पन्ना चाचा ही रथ पर बैठेंगे बस।"

"लला तू बड़ा ओर ले जा पन्ना की। तेरो का बाप लगे है जू" दीना चाचा पूरी तरह खिसिया गए थे। आखिर अभी तक वहीं रथ पर बैठते आए थे।

"चाचा, आप भी तो मेरे बाप हो।" मैंने बात को हँसी में टाल दिया था। मैं जान रहा था कि दीना चाचा की छाती पर सांप लोट रहा है। सभी लोग हँसने लगे थे और दीना चाचा अपने साथियों के साथ अपने घर चले गए थे। पन्ना चाचा ने एक बार फिर जमीन पर खिसक कर, मेरे पास आकर मेरे हाथ चूम लिए थे और आंखों में आंसू भर लाए थे। कुछ कह तो नहीं पा रहे थे बस बार-बार मेरे हाथ चूमते थे और मैंने उन्हें अपनी छाती से लगा लिया था।

धीरे-धीरे 14 अप्रैल का दिन भी आ गया था। दीना चाचा ने समिति का कोई साथ नहीं दिया था। कुछ लोगों ने मुझे बताया था कि दीना चाचा कह रहे थे चन्नी के लड़का ने ही पन्ना को उकसाया है देख लूंगा। इस बात का मुझ पर कुछ असर नहीं हुआ था।

बाबासाहेब का जुलूस निकलना शुरू हुआ था। सबसे आगे बैंड था। उसके ठीक पीछे बच्चे और जवान एक रेडियो और माइक पर "बाबासाहेब अमर रहे।" "जब तक सूरज चांद रहेगा, बाबा तेरा नाम रहेगा! 14 अप्रैल अमर है" नारे लगा रहे थे। उसके ठीक पीछे बाबासाहेब का रथ था। बैलगाड़ी पर बहुत ही सुन्दर-सी सजावट करके झांकी बनाई गई थी। जिसमें बाबा साहेग का फोटो रखा था। सजे सजाए बैल दूल्हा लगा रहे थे। धूप अगरबत्ती की खुशबू महक रही थी। और फोटो के दायीं ओर पन्ना चाचा सफेद कुर्ता-पाजामा पहने बाबा साहब के चरणों में हाथ जोड़े बैठे थे। लग रहा था पन्ना चाचा को जीवन की सारी खुशियां मिल गई हों। वे कभी बाबासाहेब के चरणों में देखते तो कभी उनके सिर पर देखते।

मैं झांकियों का निरीक्षण करते हुए उधर पहुंच गया था, "सब ठीक है चाचा" उन्होंने कुछ नहीं कहा था, सिर्फ दोनों हाथ हिलाकर अपनी सहमति जताई थी।

बैंड बजने लगा था। ओम जय जगदीश हरे की आरती से शुरू हुआ था प्रोग्राम। तभी किसी ने बैंड मास्टर को रोका था। "क्या यार ओम जय जगदीश हरे। बाबा साहब का नाम लेकर शुरू करो।" कोई नौजवान बोला था।

झांकियां चलने लगी थी। नारे लगने लगे थे। सभी खुश थे। लोग फूल बरसा रहे थे। रास्ते में लोगों ने प्याऊ लगाए थे।

जुलूस पूरे शहर का चक्कर लगाकर लौट रहा था। जुलूस की वापसी पर एक छोटी-सी सभा रखी गई थी जिसमें बार से वक्ता बुलाए गए थे। मैं उनके स्वागत में लगा था तभी समिति का एक सदस्य भागता हुआ आया और चिल्लाया था, "भइया, भइया पन्ना चाचा को गोली मार दी।"

"क्या" मेरा मुंह फटा रह गया था। मैं मुठ्ठी बांधकर भागा था। पन्ना चाचा रथ से नीचे पड़े थे। मैंने उन्हें हाथों में उठाया था। समिति क सभी सदस्यों ने उन्हें घेर लिया था। पुलिस आ गई थी। चारों ओर कोहराम मच गया था। लोग भागने लगे थे। मैं पन्ना चाचा को लेकर पुलिस वालों के साथ अस्पताल चला गया था। डॉक्टर इलाज कर रहे थे। मैं पन्ना चाचा के पास बैठा था। पन्ना चाचा का हाथ मेरे हाथ पर रेंगने लगा था और फिर उन्होंने मेरा हाथ कसकर पकड़ लिा था। "हाँ! हाँ! चाचा!! हाँ!!! बताओ! बाताओ कौन था वह" मैं बोला।

"दी... न... अ... दीना..." और मेरे हाथ पर उनकी पकड़ ढ़ीली पड़ गई थी। अगले दिन पूरे शहर में कर्फ्यू लग गया था। अखबार सिर्फ एक ही खबर से भरे पड़े थे। "सवर्णो ने एक दलित की गोली मार कर हत्या कर दी।" □

(लेखक जाने माने युवा कथाकार हैं।)

बाबासाहेब **डॉ बी. आर. अम्बेडकर** समाज की उन्नति के लिए व्यक्ति और उसकी विचार धारा के महत्व को रेखांकित करते हुए कहते हैं कि **''कोई भी सुधार तब शुरू होता है, जब कोई व्यक्ति अपने समुदाय की सत्ता और समुदाय के हित से ऊपर उठकर और उससे अलग विचारों, अपनी धारणाओं और स्वंय की स्वतंत्रता पर बल देता है, लेकिन यह सुधार आगे लगातार संपन्न होगा या नहीं वह इस पर निर्भर करता है कि उस व्यक्ति का समुदाय उसके दृढ़ विचारों को किस सीमा तक समर्थन देता है।''**

रजत रानी 'मीनू' की दो कविताएं

दलित कविता

दलित कविता
दर्द है, दर्द का अहसास है
प्यार का समन्दर है
जीवन की सच्चाई है
समता की चाहत है
स्वतंत्रता का संदेश है
मानव की गरिमा है
शिक्षा का मंत्र है
जातियों का दंश है
समाज का तंत्र है

दलित कविता
प्यार है, प्यार का अहसास है
एक विचार है
संघर्ष है, एक बेचैनी है
अधिकार चेतना की दृष्टि है
कर्तव्यबोध है

दलित कविता
न्याय है, न्याय की पुकार है
एक दलील है
दलित स्त्री विमर्श है
प्रतिनिधित्व की चेतना है

दलित कविता
समाज का अल्ट्रासाउंड है
रोगों का निदान है
स्वस्थ मानसिकता की मिशाल है
मानव-प्रेम की ज्योति है
जीवन की तलाश है
राष्ट्रीय एकता की डोर है
राष्ट्रप्रेम का संदेश है
मानव दिलों का मिलन है
दलित कविता ।।

मेरा शहर

बहुत दिनों बाद
लौटी हूं अपने शहर में
अजीब लग रहा
अपने शहर में
कुछ नहीं बदला है
दो दशक में
कुछ नहीं बदला है
दो दशक में
वहीं खड़ा है रेलवे स्टेशन
वहीं खड़ी है
बाबासाहेब की प्रतिमा
संविधान की प्रति पकड़े
पार्क के कोने में
वैसे ही कुली ढ़ो रहे हैं बोझा
वैसी ही सजी हैं मिठाई, कपड़ों की दुकानें
वहीं सड़क किनारे गांठ रहा है मोची
फटे-पुराने जूते-चप्पल
फैली पड़ी हैं उसके चारों तरफ कतरने जूते-चप्पलों की
वैसे ही खड़े हैं
कतारों में रिक्शे, तांगे, टैम्पू
वैसी ही जुटी है भीड़ प्लेटफार्म पर
हां,
यदि कुछ बदला है
एक पीढ़ी के बाद आ गई है
नई पीढ़ी
रिक्शे वाले के बेटे ने
संभाल ली बाप की विरासत
वहीं सड़क किनारे खड़े हनुमान मन्दिर में
बूढ़े पुजारी की जगह दिख रहा है
एक नया दमकता
युवा चेहरा।
जिसके माथे पर तिलक है
हाथ में ब्लैकबैरी मोबाइल फोन
दुकानों पर अब बैठे हैं नए-नए मुखौटे
जिन्हें मैं पहचानती नहीं।
परन्तु-
था कभी मेरा शहर
मैं गुजरती थी यहां से
एक बिना डोर के रिश्ते जैसे बंधन में
बंध जाती हूं मैं आज भी
इस शहर से,
मैं पहचानती हूं यहां की गलियां, सड़कें
दो दशक पूर्व देखा था यहां एक पागल लड़की को घूमते
हजारों नजरें गड़ी होती थीं उस पर
और आज-
फिर पढ़ रही हूं अखबार में खबर
एक नाबालिग दलित लड़की के साथ
बलात्कार की खबर।
मेरा सिर चकरा जाता है
मेरे शहर में
इस परिर्वतन को देख कर।
सोचती थी सब बदल गया होगा
पर-
कुछ नहीं बदला है
दो दशक में। □

(कवयित्री दिल्ली विश्वविद्यालय के कमला नेहरू कॉलेज में सहायक प्राध्यापक हैं।)

समाज सुधारक

185वीं जयंती दिवस 11 अप्रैल पर विशेष

सामाजिक क्रांति के जनक ज्योतिबा फुले

▪ अनिल कुमार

ज्योतिबा फुले को लोग अनेक विशेषणों से अंलकृत करते रहे हैं। कोई उन्हें आधुनिक भारत में सामाजिक क्रान्ति का जनक, कोई भारत का मार्टिन लूथर, कोई नारी का प्रथम मुक्तिदाता, तो कोई दलितों-शोषितों का आधुनिक युग का मसीहा ने नाम से जानता है। प्राचार्य पी. के. अत्रे की महात्मा फुले नामक फिल्म के निर्माण का उद्घाटन करते हुए डॉ. बी. आर. अम्बेडकर ने ज्योतिबा की गणना भारत के महानतम समाज सुधारकों में की थी।

ज्योतिबा का जन्म सन् 1827 में पुणे के निकट एक गांव में हुआ था। उनके पिता का नाम गोविन्दराव और माता का चिमनाबाई था। ज्योतिबा की शिक्षा 7 वर्ष की उम्र में आरंभ हुई। वे मराठी कोर्स समाप्त ही कर पाए थे कि उनके पिता ने किसी के बहकावे में आकर उन्हें स्कूल से हटा लिया। बाद में 1841 में जब ज्योतिबा की अवस्था 14 वर्ष की थी, अपनी गलती महसूस करके गोविन्दराव ने उन्हें फिर स्कूल में भर्ती करा दिया। 1847 में इंग्लिश स्कूल की परीक्षा पास कर ज्योति ने जीवन में प्रवेश किया। उनका विवाह 14 वर्ष की अवस्था में एक 8 वर्षीय कन्या सावित्रीबाई से कर दिया गया था।

ज्योतिबा लड़कियों के लिए पाठशाला खोलने वाले प्रथम भारतीय थे। उनका प्रथम स्कूल पुणे में जुलाई और दूसरा सितम्बर 1851 में खुले। लड़कियों के लिए उनका

तीसरा स्कूल पुणे में ही मई 1852 में खुला। इन स्कूलों के संचालन के लिए उन्होंने एक समिति का गठन कर दिया था। सावित्री बाई फुले ने आकर यहीं प्रधानाध्यापिका का काम संभाल लिया था, क्योंकि ज्योतिबा अपना अधिकांश समय वहीं लगा रहे थे। पाठशालाओं के लिए उपयुक्त मराठी पाठ्य सामग्री तैयार करने का काम भी उन्होंने हाथ में लिया था। इस काम के लिए उन्हें दक्षिण समिति से 75 रु. मासिक का अनुदान भी प्राप्त हुआ था।

1848 और 1852 के बीच ज्योतिबा फुले ने 18 कन्या पाठशालाएं खोलीं, इनमें 6 पुणे नगर के भिन्न-भिन्न भागों में, 6 पुणे जिले के भिन्न-भिन्न स्थानों पर, 3 सतारा जिले में और 3 अन्य स्थानों पर। इस तरह उन्होंने कन्या पाठशाला खोलने का एक आन्दोलन चलाया था।

विधवाओं की हालत सुधारने के लिए ज्योतिबा ने अनेक ठोस काम किए। उन्होंने स्वयं कुछ विधवा विवाह भी कराए। विधवाओं की मुंडन जैसी निर्मम प्रथा की समाप्ति में उन्होंने महत्वपूर्ण हिस्सा लिया। पर पुणे जैसे रुढ़िवाद के गढ़ में गर्भिणी विधवाओं के लिए एक अनाथालय की स्थापना कर, जिस साहस और नैतिक बल का उन्होंने परिचय दिया वह बेजोड़ है। अनाथालय में गर्भिणी विधवाओं के लिए प्रसव की समुचित व्यवस्था थी और छूट थी कि वे चाहे तो अपने नवजात शिशु को वहीं छोड़ दें, या अपने साथ ले जाएं किसी भारतीय द्वारा स्थापित यह प्रथम अनाथालय था। ज्योतिबा का दत्तक पुत्र यशवन्त वहीं जन्में शिशुओं में से एक था। बाद में न्यायमूर्ति रानाडे के सहयोग से दूसरा अनाथालय पंडरपुर में सन् 1857 में स्थापित किया गया।

किसानों की समस्याओं के समाधान के लिए ज्योतिबा ने अनेक कार्य किए। शायद वे आधुनिक भारत के प्रथम भारतीय हैं, जिन्होंने किसान सत्याग्रह का संगठन और नेतृत्व किया। पुणे जिले के जुनार तालुका के किसान जमींदारों, महाजनों और सरकारी कर्मचारियों के शोषण और मनमानी से तंग आकर एक वर्ष तक खेत जोतना बन्द कर दिए। सत्याग्रह तभी समाप्त हुआ जब सरकारी अधिकारियों ने संघर्ष के संचालक ज्योतिबा से आकर सुलह की।

खेती में सुधार लाने के लिए ज्योतिबा ने अनेक रचनात्मक सुझाव रखे और कार्य

किए। इस उद्देश्य से उन्होंने "खेतिहरों का हीपकार्ड" नामक एक पुस्तक भी लिखी थी। खेती सम्बन्धी जो विचार इस पुस्तक के माध्यम से हमारे सामने आए हैं, उसे पढ़कर आश्चर्य होता है। ज्योतिबा ने घाटियों और नदियों पर बांध बांधने का सुझाव दिया है और इस काम में सेना से सहायता लेने की बात कही है। किसानों के बीच खेती करने और अधिक अन्न पैदा करने वाले किसानों को पारितोषिक देने का सुझाव भी दिया है। उन्होंने यह भी बताया है कि सुधरे नस्ल की भेड़ और बकरियां बाहर से मंगा कर किसानों को दी जानी चाहिए।

ज्योतिबा प्रचार में नहीं ठोस काम में विश्वास रखते थे। जब नवनिर्मित खड़गवासला नहर के पानी को अंध-विश्वास में डूबे किसान सिंचाई के लिए उपयोग करने से कतराते दिखे तो ज्योतिबा ने स्वयं 200 एकड़ जमीन खरीदी और उस पर उन्नत ढंग से खेती आरंभ कर दी। उनके बढ़ते हुए उपज को देख किसान स्वयं उसी प्रकार खेती करने और नहर के पानी का उपयोग करने लगे।

ज्योतिबा के लेखन और कार्यों में सर्वाधिक प्रमुखता उस विद्रोह को मिली है जिसे उन्होंने जातिवाद, सामाजिक असमानता और धर्म के नाम पर आर्थिक दोहन के विरुद्ध खड़ी की थी। गुलामगिरी यानी ब्राह्मणवादी की आड़ में साम्राज्य में दासता (1873) नामक पुस्तक में उन्होंने अवतारवाद, जाति व्यवस्था की उत्पत्ति सम्बन्धी धार्मिक सिद्धान्त को नकारा है। ब्राह्मणों (आर्यो) के भारत आगमन पर क्षत्रियों के साथ उनके युद्धों और पराजय के बाद उनको शूद्र बनने के लिए बाध्य किए जाने के बारे में विस्तार से लिखा है। उनकी दूसरी पुस्तक पुराहिती का पर्दाफाश में, पुरोहित किस प्रकार यजमान का जन्म से मरण तक दोहन करता है, प्रकाश डाला गया है। उनकी तीसरी पुस्तक सार्वजनिक सत्य धर्म पुस्तक (मरणोपरान्त प्रकाशित) में उन्होंने अंध विश्वासों, रुढ़ियों, कर्मकांडों, धार्मिक अनुष्ठानों और दन्त कथाओं का जोरदार खंडन किया है और बताया कि उनके अनुयायी कैसा आचरण और धार्मिक कार्य करें। ज्योतिबा को इन पुस्तकों और आन्दोलनों की प्रेरणा थॉमस पेन की मानव अधिकार नामक पुस्तक, अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम और अब्राहम लिंकन द्वारा अमेरिका में दासता के मूलोच्छेदन से मिली थी। उपरोक्त गुलामगिरी को उन्होंने अमेरिकी नागरिकों को समर्पित किया है।

ज्योतिबा के लेखन और कार्यों में सर्वाधिक प्रमुखता उस विद्रोह को मिली है जिसे उन्होंने जातिवाद, सामाजिक असमानता और धर्म के नाम पर आर्थिक दोहन के विरुद्ध खड़ी की थी।

ऊंच-नीच, भेदभाव और अन्याय के विरुद्ध ज्योतिबा का संघर्ष उसी समय आरंभ हो गया था जब वे ब्राह्मण मित्र की बारात से अपमानित होकर लौटे थे। सत्यशोधक समाज की स्थापना (24 सितम्बर, सन् 1873) के पूर्व का समय जनजागरण में लगा। इसके लिए ज्योतिबा ने महाराष्ट्र के दूर-दूर के स्थानों की यात्राएं की, और संघर्ष के लिए लोगों का आहवान किया। इसके लिए उन्हें कड़े विरोध का सामना करना पड़ा से गुजरना पड़ा, एक बार तो उनका काम तमाम कर देने के लिए उनके विरोधियों ने दो हत्यारे भी भेजे। पर हत्यारे भक्त बन कर लौटे।

ज्योतिबा तत्कालीन भारत में ब्रिटिश सरकार की शिक्षा नीति के कट्टर विरोधी थे जिसमें उच्च वर्ग और जातियों के शिक्षण पर जोर था। उनका कहना था कि इसी शिक्षा नीति का दुष्परिणाम है कि प्रशासन के प्राय: सभी अंगों पर एक दो जातियों का प्रभुत्व हो गया है। वे बराबर जोर देते थे कि प्रशासन में सभी जातियों के लोग लिए जाने चाहिए।

दलितों और शूद्रों में आत्मसम्मान और आत्म निर्भरता की भावना भरना उनके आन्दोलन का एक प्रमुख अंग था। इसकी पुष्टि में उस विशाल जुलूस का जिक्र किया जा सकता है जिसे ज्योतिबा ने अप्रैल 1885 में पुणे में आयोजित किया था। महाराष्ट्र के विभिन्न भागों से आए लोग उसमें सम्मिलित हुए थे। न्यायमूर्ति महादेव गोविद रानाडे तथा कई गणमान्य लोगों ने भी उसमें भाग लिया था।

ज्योतिबा फूले के विचारों और कार्यो पर कई आक्षेप किए जाते हैं। कुछ का आरोप है कि उनके आन्दोलन में ब्राह्मण विराधी पुट था। ज्योतिबा के कुछ अनुयायियों में इस प्रकार की भावना हो सकती है। पर जब तक ज्योतिबा जीवित रहे उन्होंने ब्राह्मणवाद और ब्राहाण में बराबर भेद रखा। यही कारण है कि अनेक उदारवादी ब्राह्मण उनके कार्यों में साथ थे।

ब्रिटिश शासन को उसकी गलत शिक्षा नीतियों और आर्थिक शोषण के लिए उन्होंने कभी नहीं बख्शा।

एक दूसरी बात भी कही जाती है कि जिस प्रथा को ज्योतिबा दासता मानते थे, वह पश्चिम में प्रचलित दासता से भिन्न थी। उस प्रकार की दासता किसी न किसी रूप में भारत में भी विद्यमान थी। जिस दासता का ज्योतिबा ने अपनी पुस्तक में जिक्र किया है वह निम्न वर्ग की मानसिक गुलामी, सामाजिक असमानता एवं धर्म के नाम पर शोषण है। □

(लेखक युवा पत्रकार हैं।)

बाल स्तंभ

भारत के नवनिर्माण में डॉ. अम्बेडकर का योगदान

▪ तेजपाल सिंह 'तेज'

बाबा साहेब डॉ. बी. आर. अम्बेडकर के जन्म दिवस की पूर्व संध्या पर एक उच्चतर माध्यमिक स्कूल में प्रार्थना सभा हो रही है। अध्यापकों के लिए कुर्सियां तथा बच्चों के बैठने के लिए टाट पट्टिकाओं की व्यवस्था है। एक माइक भी लगा है। प्रार्थना के बाद स्कूल के प्रधानाचार्य महोदय सभा में उपस्थित छात्रों को संबोधित करते हुए।

प्यारे बच्चों! आज अप्रैल माह की तेरह तारीख है, कल चौदह होगी और कल अवकाश भी रहेगा । आप सोच रहे होंगे कि कल चौदह अप्रैल का अवकाश किसलिए? जैसा कि आप सबको मालूम है कि भारत दुनिया का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश है। प्रत्येक देश का अपना एक संविधान होता है। क्या आप जानते हैं कि भारत का संविधान किसने बनाया था? (बच्चों के बीच से कुछ आवाजें उठती हैं।)... हां! आपने सही कहा कि हमारे देश का संविधान डॉ. अम्बेडकर ने ही बनाया था और प्रति वर्ष चौदह अप्रैल को उनके जन्म दिन के उपलक्ष्य में ही सार्वजनिक अवकाश रहता है। अब आप अपने-अपने स्थान पर शांति से बैठ जाएं। श्री बाबू राम शर्मा जी आपको डॉ. अम्बेडकर के प्राथमिक जीवन और शिक्षा तथा उनके द्वारा किए गए कार्यो के विषय में विस्तार से बताएंगे। मुझे आशा है कि आप उनकी बातों को ध्यान से सुनेंगे और डॉ. अम्बेडकर के जीवन और उनके द्वारा किए गए कार्यों से सीख लेकर अपने और समाज के हितों के प्रति सदैव सजग रहेंगे।... और अब माननीय बाबू राम शर्मा जी...(बाबू राम शर्मा जी..... प्रधानाचार्य महोदय का धन्यवाद करते हुए) प्यारे बच्चों! जीवन में कितनी भी पाबन्दियां क्यों न हों, कितना ही अन्धकार क्यों न हो, रास्ते में कितनी ही कठिनाइयां हों, किन्तु जो व्यक्ति आंधी और तूफान में भी हार नहीं मानता और नाव को निरंतर आगे बढ़ाने की ठान लेता है, तो वह एक दिन मंजिल पर पहुंच ही जाता है।

आगे कुछ कहने से पहले मैं चाहता हूं कि आपको डॉ. अम्बेडकर के प्रारंभिक जीवन के विषय में कुछ बताऊं। तो प्यारे बच्चों! डॉ. भीमराव रामजी अम्बेडकर जी का जन्म 14 अप्रैल, 1891 को मध्य प्रदेश में इंदौर के निकट महू छावनी में एक महार जाति के परिवार में हुआ। उनका पैतृक गांव रत्नागिरी जिले की मंडणगढ़ तहसील के अंतर्गत अम्बावडे गांव था। उनके पिता का नाम रामजी राव व दादा का नाम मालोजी सकपाल था। वे अपने पिता की चौदह संतानों, 11 लड़कियों व 3 लड़कों, में चौदहवीं संतान थे। उस समय पूर्व के 13 बच्चों में से केवल चार बच्चे बलराम, आनंदराव, मंजुला व तुलासा ही जीवित थे। शेष बच्चों की अकाल मृत्यु हो चुकी थी। उनके पिता जी फौज में थे और कबीर पंथ के बहुत बड़े अनुयायी थे। उनकी माता श्रीमती भीमाबाई भी धार्मिक प्रवृति की घरेलू महिला थीं। 20 नवम्बर, 1896 में मात्र 5 वर्ष की आयु में ही माता का साया उनके सिर से उठ गया था। इसके बाद उनकी बुआ मीरा ने चारों बहन-भाइयों की देखभाल की। जाहिर है कि डॉ. भीम राव अम्बेडकर का जन्म ऐसी परिस्थिति में हुआ था जब देश में सामन्तवादी ताकतों का बोलबाला था तथा सवर्णों के अन्दर इस तरह की मानसिकता थी कि वे जानवर को स्पर्श करना तो अपना धर्म समझते थे, किन्तु दलितों को स्पर्श करना उनके लिए अधर्म था।

भीमराव ने प्रारंभिक शिक्षा सतारा की प्राथमिक पाठशाला में हासिल की। 7 नवम्बर, 1900 को उनका दाखिला सतारा के गवर्नमेंट वर्नाक्यूलर हाईस्कूल में करवाया गया। वे बचपन से ही अत्यन्त कुशाग्र बुद्धि के थे। इस पर भी सामाजिक कुरीतियों के चलते उन्हें अछूत के नाम पर प्रतिदिन अनेक असहनीय अपमानों और यातनाओं का सामना करना पड़ता था। लेकिन, बालक भीमराव एकदम विपरीत सामाजिक परिस्थितियों के बीच अनवरत

रूप से अपने शिक्षा-अर्जन के कार्य में लगे रहे और वर्ष 1907 में उन्होंने मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की।

वर्ष 1908 में मात्र 17 वर्ष की आयु में उनका रमाबाई के साथ विवाह कर दिया गया। विवाह बंधन में बंधने के बावजूद उन्होंने मुंबई के एलिफिंस्टन कॉलेज से एफ.ए. अर्थात इंटरमीडिएट और बड़ौदा के महाराजा द्वारा प्रदत्त 25 रुपये प्रतिमाह छात्रवृति के बलबूते वर्ष 1912 में बी.ए. की परीक्षा बहुत अच्छे अंकों के साथ उत्तीर्ण की। 12 दिसम्बर, 1912 को उन्हें यशवंत नामक पुत्र की प्राप्ति हुई। 2 फरवरी, 1913 को पिता के देहान्त के बाद भीमराव अम्बेडकर को अपनी पढ़ाई बीच में ही छोड़नी पड़ी और पारिवारिक दायित्व के निर्वहन के लिए नौकरी करने को विवश होना पड़ा। लेकिन, थोड़े समय बाद ही उन्हें बड़ौदा के महाराजा की कृपा पुनः प्राप्त हुई और उन्हें उच्च शिक्षा हासिल करने के लिए विदेश जाने का मौका मिला। वे एस.एस. अकोना जहाज से अमेरिका के लिए रवाना हुए और 23 जुलाई, 1913 को न्यूयार्क जा पहुंचे। वहां जाकर उन्होंने कोलम्बिया विश्वविद्यालय में प्रवेश ले लिया। उन्होंने वर्ष 1915 में एम.ए. की डिग्री ली और 10 जून, 1916 को अर्थशास्त्र में अमेरिका के कोलंबिया विश्वविद्यालय से पीएच.डी. पूरी की। हालांकि नियमानुसार उनका शोध धनाभाव के चलते आठ वर्ष बाद प्रकाशित होने के कारण पीएच.डी डिग्री वर्ष 1924 में ही हासिल हो सकी। यह वह वर्ष था जब भीमा वास्तव में डॉ. भीमराव अम्बेडकर बने। उन्होंने वर्ष 1916 में प्रख्यात 'लंदन स्कूल ऑफ इकॉनामिक्स एण्ड पॉलीटिकल साइंस' में दाखिला ले लिया। अचानक छात्रवृत्ति रोक दिए जाने से उन्हें पढ़ाई बीच में ही छोड़कर 21 अगस्त, 1917 को स्वदेश लौटने को विवश होना पड़ा। भारत लौटकर उन्होंने पूर्व में हस्ताक्षरित अनुबंध के अनुसार महाराजा बड़ौदा की सेना में सैन्य सचिव के पद पर नौकरी की इस अत्यन्त सम्मानजनक पद पर रहने के बावजूद उन्हें अछूत के रूप में निरन्तर अपमान और तिरस्कार के दंश को झेलना पड़ा। अंततः उन्होंने इस पद को छोड़ दिया। इसके बाद वे एक निजी ट्यूटर व लेखाकार के रूप में काम करने लगे। सामाजिक भेदभाव के चलते, इसमें भी उन्हें सफलता नहीं मिली। बाद में उन्हें परिचित मित्रों के सहयोग से नवम्बर, 1918 में बंबई के सिडनेम कॉलेज ऑफ कॉमर्स एण्ड इकॉनामिक्स में राजनीतिक अर्थव्यवस्था के प्रोफेसर के रूप में नौकरी मिल गई। इसी दौरान वर्ष 1920 में ही संयोगवश उन्हें महाराजा कोल्हापुर द्वारा प्रदत्त छात्रवृति हासिल हो गई और उन्होंने 5 जुलाई, 1920 को प्रोफेसर के पद को छोड़ दिया। वे पुनः 'लंदन स्कूल ऑफ इकॉनामिक्स एण्ड पॉलिटिकल साइंस' में अपनी अधूरी पढ़ाई पूरी करने के लिए लंदन जा पहुंचे और सितम्बर, 1920 से अपनी पढ़ाई शुरू कर दी। जनवरी, 1923 में उन्हें डी.एस.सी. अर्थात डॉक्टर ऑफ साइंस की उपाधि प्रदान की गई। लंदन के 'गेज इन' से उन्होंने बैरिस्टर की परीक्षा उत्तीर्ण की।

बच्चों! डॉ. अम्बेडकर ने समाज सुधार के लिए ऐसे-ऐसे काम किए कि वे एक प्रबुद्ध विचारक, न्याय के पक्षधर और स्पष्टवादी व्यक्ति बनकर समाज के सामने उभरे और समाज ने उन्हें ''बाबा साहेब'' की जन-उपाधि से सम्मानित किया। प्रत्येक व्यक्ति का कोई न कोई प्रेरणा-सूत्र होता है। बाबा साहेब ने शोषण-उत्पीड़न व अन्याय के विरोध, समता, बन्धुता और भाई-चारे जैसे मानवीय मूल्यों की स्थापना की प्रेरणा कबीर, फुले और महात्मा बुद्ध के जीवन दर्शन से प्राप्त की थी।

बाबासाहेब मानते थे कि धर्म व्यक्ति के लिए है, व्यक्ति धर्म के लिए नहीं। वे मानते थे कि धर्म का आधार बुद्धि होना चाहिए और समता, स्वतंत्रता और बन्धुता का भाव मानव व मानवता के कल्याण का साधन होना चाहिए। इसलिए उन्होंने 14 अक्तूबर 1956 को अपने दस लाख से भी ज्यादा अनुयायियों के साथ बौद्ध धम्म को अपनाकर जाति व वर्ण की बेड़ियों को तोड़ने का क्रांतिकारी कदम उठाया। बाबासाहेब ने कहा था कि मैं बौद्ध धम्म को इसलिए पसंद करता हूँ क्योंकि बौद्ध धम्म में प्रज्ञा अर्थात अन्धविश्वास तथा दुष्ट प्रवृत्ति के स्थान पर बुद्धि का प्रयोग, दूसरे करुणा अर्थात् प्रेम और तीसरे समता अर्थात समानता और स्वतंत्रता का भाव समाहित है। मनुष्य इन्हीं तीन सिद्धांतों को शुभ आनंदित जीवन के लिए चाहता है।

बाबा साहेब ने सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक मुद्दों पर गंभीरता से विचार करते हुए दलित समाज के साथ-साथ प्रत्येक वर्ग के मजदूरों से जुड़े आर्थिक मुद्दों को भी अपनी चिंता में शामिल किया।

बच्चों! किसी भी प्रजातांत्रिक देश का सबसे उपयुक्त दस्तावेज ''संविधान'' होता है। संविधान में तमाम मानव-हितों के प्रावधानों के बावजूद यदि लोकतंत्र खतरे में पड़ता है तो बाबासाहेब इसे संविधान की नहीं, अपितु इसके लागू करने वालों की असफलता मानते हैं। इसीलिए वे चाहते थे कि संविधान का कार्यान्वयन सभी प्रकार के पूर्वाग्रहों और स्वार्थों से ऊपर उठकर किया जाना चाहिए।

बच्चों! बाबा साहेब का मानना था कि भारतीय समाज में नारी की भी वही अवस्था है जो गरीब निरीह दलितों की। इसलिए उन्होंने महिला संगठनों की आवश्यकता भी जाहिर की। इसके लिए उन्होंने बच्चों के साथ-साथ महिलाओं की शिक्षा व उनमें भविष्य के प्रति जागरूकता जगाने के साथ-साथ बाल-विवाह का जमकर विरोध किया। जब बाबा साहेब ने हिन्दू-कोड बिल को लेकर मंत्रिमंडल से त्यागपत्र दिया तब उसमें उनकी प्रगतिशीलता और नारियों के प्रति करुणा भाव ही झलकता है। और आज जो संसद में महिला आरक्षण की आग धधक रही है, वह बाबासाहेब की आवाज की ही अनुगूंज है। बाबा साहेब किसी एक वर्ग के नहीं, अपितु समग्र समाज के अगुआ थे।

बाबा साहेब लोकतंत्र के प्रबल समर्थक थे और मानते थे कि यदि लोकतंत्र की बागडोर पूंजीपतियों के हाथों में जाती है तो गरीब और निरीह लोगों को गुलामी में जीना-मरना पड़ेगा। इसलिए बाबा साहेब एक ऐसी सरकार की जरूरत समझते थे जो एक समुदाय को दूसरे समुदाय के शोषण से बचाए और देश में आंतरिक दंगों, हिंसा तथा अव्यवस्था पर काबू रख सके। बाबा साहेब में राष्ट्र-प्रेम कूट-कूट कर भरा था।

सभी समता, स्वतंत्रता व भ्रातृत्व के भाव के आधार पर प्रगति व खुशहाली के अवसर प्राप्त कर सकें, यही बाबासाहेब का मानवतावाद है जिसके लिए वे जीवन भर संघर्षरत रहे। उन्होंने आजीवन गरीबों, मजदूरों, अछूतों, दलितों, पिछड़ों और समाज के शोषित वर्गों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक आदि हर क्षेत्र में बराबर का स्थान दिलाने के लिए संघर्ष किया। वे 6 दिसम्बर, 1956 को अपने अनंत संघर्ष की बागडोर नए युग के कर्णधारों के हाथों सौंप, महापरिनिर्वाण को प्राप्त हो गए। उन्होंने समाजसेवक, शिक्षक, कानूनविद्, पदाधिकारी, पत्रकार, राजनेता, संविधान निर्माता, विचारक, दर्शनिक, वक्ता आदि अनेक रूपों में देश व समाज की अत्यन्त उत्कृष्ट व अनुकरणीय सेवा की व अपनी अनूठी छाप छोड़ी। महामानव डॉ. भीमराव अम्बेडकर को देश व समाज के लिए उनके आजीवन समग्र योगदान को नमन करते हुए भारत सरकार ने वर्ष 1990 में देश के सर्वोच्च सम्मान 'भारत-रत्न' से अलंकृत किया।

बच्चों! अगर वास्तव में हम बाबा साहेब के आदर्शों को मानने के लिए वचनबद्ध हैं, तो दिल और दिमाग से वर्ण और वर्गवाद के फासले को खत्म करके देश को ऐसा संस्कार देना होगा। जिससे अंगुलियां जुटकर मुट्ठी बन जाएं, हम एक हो जाएं और हमारी एक ही कोशिश हो, एक मजबूत राष्ट्र के निर्माण की। भारत के नवनिर्माण में बाबासाहेब का सहयोग हमेशा-हमेशा याद किया जाता रहेगा। बच्चों! मैंने आज केवल डॉ. अम्बेडकर के बाल्यकाल और शिक्षा का विवरणात्मक कथन भर पेश किया है। मुझे आशा है कि बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर के जीवन का यह अंश जहां तक नौजवानों में शिक्षा के प्रति रुझान और कठिन हालातों से जूझने की प्रेरणा जगाएगा, वहीं प्रौढ़ों में भी आपसी भाईचारा, समता, मैत्री और समाज सेवा का भाव उत्पन्न करेगा। एक बात और, अपने-अपने घर जाते समय विद्यालय के मुख्य द्वार से आज के इस कथन की एक-एक प्रति अपने साथ अवश्य ले जाएं ताकि यहां की बात यहीं तक न रह जाए, सदैव आपके साथ रहे।

इसी के साथ आप सबका धैर्य बनाए रखने और मेरी बातों को ध्यान से सुनने के लिए बहुत-बहुत धन्यवाद। ❑

बच्चों! अगर वास्तव में हम बाबा साहेब के आदर्शों को मानने के लिए वचनबद्ध हैं, तो दिल और दिमाग से वर्ण और वर्गवाद के फासले को खत्म करके देश को ऐसा संस्कार देना होगा। जिससे अंगुलियां जुटकर मुट्ठी बन जाएं, हम एक हो जाएं और हमारी एक ही कोशिश हो, एक मजबूत राष्ट्र के निर्माण की। भारत के नवनिर्माण में बाबा साहेब का सहयोग हमेशा-हमेशा याद किया जाता रहेगा। बच्चों! मैंने आज केवल डॉ. अम्बेडकर के बाल्यकाल और शिक्षा का विवरणात्मक कथन भर पेश किया है। मुझे आशा है कि बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर के जीवन का यह अंश जहां तक नौजवानों में शिक्षा के प्रति रुझान और कठिन हालातों से जूझने की प्रेरणा जगाएगा, वहीं प्रौढ़ों में भी आपसी भाईचारा, समता, मैत्री और समाज सेवा का भाव उत्पन्न करेगा।

मासिक पत्रिका

" सामाजिक न्याय संदेश "

समतावादी विचार का संवाहक

से जुड़ने के लिए

डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान द्वारा प्रकाशित मासिक पत्रिका 'सामाजिक न्याय संदेश' का प्रकाशन पुनः आरम्भ हो गया है। समता, स्वतंत्रता, बन्धुत्व एवं न्याय पर आधारित सशक्त एवं समृद्ध समाज और राष्ट्र की संकल्पना को साकार करने के संदेश को आम नागरिकों तक पहुँचाने में सामाजिक न्याय संदेश की भूमिका बहुत ही महत्वपूर्ण है। 'सामाजिक न्याय संदेश' देश के नागरिकों में मानवीय संवेदनशीलता, न्यायप्रियता तथा दूसरों के अधिकारों के प्रति सम्मान की भावना जगाने के लिए समर्पित है।

'सामाजिक न्याय संदेश' प्रतिष्ठान के कार्यक्रमों, योजनाओं तथा बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर के विचारों एवं उनके दर्शन को भी आम नागरिकों तक पहुँचाने का काम बखूबी कर रहा है।

सामाजिक न्याय के कारवां को आगे बढ़ाने में इस पत्रिका से जुड़कर आप अपनी भूमिका निभा सकते हैं। आज ही पाठक सदस्य बनिए, अपने रिश्तेदारों व मित्रों को भी सदस्य बनाईए, वार्षिक पाठक सदस्यता ग्रहण करने के लिए एक वर्ष के लिए रू. 100/-, दो वर्ष के लिए रू. 180/-, तीन वर्ष के लिए रू. 250/-, का डिमांड ड्राफ्ट या मनीऑर्डर जो **'डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान'** के नाम हो, प्रतिष्ठान के पता पर भेजें या प्रतिष्ठान के कार्यालय में जमा करें। आउट स्टेशन्स चेक स्वीकार नहीं किए जाएंगे। पत्रिका को और बेहतर बनाने के लिए आपके अमूल्य सुझाव का भी हमेशा स्वागत रहेगा।

– सम्पादक

मासिक पत्रिका

" सामाजिक न्याय संदेश "

समतावादी विचार का संवाहक

पत्रिका के पाठक सदस्य बनिए

मैं... डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान द्वारा प्रकाशित पत्रिका 'सामाजिक न्याय संदेश' का वार्षिक/ द्विवार्षिक/ त्रैवार्षिक सदस्यता ग्रहण करना चाहता/ चाहती हूँ। इस हेतु वार्षिक/ द्विवार्षिक/ त्रैवार्षिक सदस्यता शुल्क (रू................) डिमांड ड्राफ्ट/ मनी ऑर्डर/चैक से भेज रहा/रही हूँ। कृपया मुझे पत्रिका का सदस्य बनाकर निम्नलिखित पते पर पत्रिका भेंजें। आउट स्टेशन्स चेक स्वीकार नहीं किए जाएंगे।

धन्यवाद।

पत्रिका भेजने के लिए पताः

श्री...

....

....

....

फोन नं. ....

ई.मेल ....

वार्षिक सदस्यता शुल्क ------------------- रू. 100/-

द्विवार्षिक सदस्यता शुल्क ------------------- रू 180/-

त्रैवार्षिक सदस्यता शुल्क ------------------- रू. 250/-

डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान द्वारा विज्ञान भवन में आयोजित चतुर्थ डॉ. अम्बेडकर स्मारक व्याख्यान कार्यक्रम में शिरकत करते हुए प्रतिष्ठान की चेयरपर्सन एवं सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्री कुमारी सैलजा।

विश्व पुस्तक मेला में डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान के स्टॉल पर सी.डबल्यू.बी.ए. के पुस्तकों के लोकार्पण के अवसर पर प्रतिष्ठान के चेयरपर्सन व सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्री कुमारी सैलजा, विभाग के सचिव श्री अनिल गोस्वामी, संयुक्त सचिव सह सदस्य सचिव डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान श्री संजीव कुमार, माननीय मंत्री के निजी सचिव श्री अनूप कुमार अग्रवाल व प्रतिष्ठान के निदेशक विनय कुमार पॉल व अन्य।

RNI No. DELHIN/2003/9036

प्रकाशक व मुद्रक **विनय कुमार पॉल**, द्वारा डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान के लिए अरावली प्रिन्टर्स एण्ड पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड, W-30, ओखला फेस-II, नई दिल्ली 110020 से मुद्रित तथा 15, जनपथ नई दिल्ली 110001 से प्रकाशित।
सम्पादक : **सुधीर हिलसायन**